कार्यशाला

उच्च शिक्षा की स्थिति : स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के सन्दर्भ में

५ मार्च २०१०

महाराणा प्रताप महाविद्यालय
जंगल धूसड़, गोरखपुर

सम्पादक
डॉ. प्रदीप राव

आयोजक
महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

उच्च शिक्षा की स्थिति : स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के संदर्भ में

विचार-विमर्श हेतु परिकल्पना/दृष्टि

डॉ. प्रदीप राव
संयोजक

कहा जाता है कि शिक्षा की सार्थकता इसी में है कि वह मनुष्य को संतुलित और श्रेष्ठ जीवन प्रदान करे। मनुष्य का आत्मिक विकास, संसारिकता से आध्यात्मिकता की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति, गुण-अवगुण को परखने की शक्ति तथा उचित-अनुचित के विश्लेषण की वृत्ति शिक्षा से ही सम्भव रही है। शिक्षा ही प्राणि को मनुष्य बनाती है। शिक्षा लौकिक एवं पारलौकिक जीवन के संतुलित विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। शिक्षा से ही मनुष्य का जीवन विशुद्ध, प्रज्ञा सम्पन्न, परिष्कृत और समुन्नत होता है। मनुष्य का जीवन शिक्षा और ज्ञान से ही धर्म प्रवण, नैतिक मूल्यों से युक्त, उच्च आदर्शों से संवलित, बहुमुखी व्यक्तित्व से युक्त और जीविकोपार्जन हेतु कुशल होता है।

भारतीय मनीषियों द्वारा तीन लोक-मनुष्य लोक, पितृलोक और देवलोक-के संदर्भ में कहा गया है कि मनुष्य लोक पुत्र के द्वारा, पितृलोक यज्ञादि कर्म के द्वारा और देवलोक विद्या द्वारा ही जीता जा सकता है। उपरोक्त तीनों लोकों में देवलोक श्रेष्ठ माना गया, अस्तु विद्या प्रशंसनीय मानी गई। यथा-**मनुष्यलोकः पितृलोको देवलोको इति। सोऽयं मनुष्लोकः पुत्रेणैव जय्यो नान्येन कर्मणा। कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः। देवलोको वै लोकानां श्रेष्ठः। तस्माद् विद्यां प्रशंसन्ति।** (वृहदारण्यक उपनिषद्, १.५.१६)। विष्णु पुराण में कहा गया है कि अज्ञानता अन्धकार के समान होती है, यथा-**अन्धं तम इवाज्ञानम्।** भारतीय परम्परा में तो यहाँ तक कहा गया है कि ज्ञान मनुष्य का तीसरा नेत्र है। जो उसे समस्त तत्त्वों के मूल को समझने में समर्थ करता है तथा उसे सही कार्यों की ओर प्रवृत्त करता है। यथा-**ज्ञानं तृतीयं मनुजस्य नेत्रं समस्ततत्वार्थविलोकिदक्षम्**। महाभारत में भी विद्या अर्थात् ज्ञान की प्रतिष्ठा को स्वीकार करते हुए कहा गया कि-**नास्ति विद्यासमं चक्षुर्नास्ति सत्यसमं तपः**- अर्थात् विद्या के समान दूसरा कोई नेत्र नहीं है। वायु पुराण में कहा गया है कि ज्ञान से ही शाश्वत् की उपलब्धि होती है अर्थात्-**ज्ञानात् शाश्वतस्योपलब्धिः।** विद्यालयी शिक्षा का 'उद्देश्य' भी दीक्षान्त उपदेश में स्पष्टतः लक्षित होता है। यथा-सत्यंवद। धर्म चर।.. **देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यं। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि।**

किन्तु जब हम गुलामी की जंजीरों में जकड़े-जकड़े मानसिक परतन्त्रता के शिकार बने तो शिक्षा का उपरोक्त उद्देश्य या तो समाप्त हो गया या दर्शन, ग्रन्थ और स्वातन्त्रयोत्तर काल के बने शिक्षा अयोगों की रपटों में सिमट गया। हम मैकाले शिक्षा पद्धति के ऐसे गुलाम बने कि आज तक उससे उबर पाने में समर्थ नहीं हो सके। यद्यपि कि आजादी के साढ़े छः दशक बाद मैकाले और उसकी शिक्षा नीति पर छाती पीटने का मतलब नहीं समझाया जा सकता। तथापि यह स्वीकार करना ही होगा कि आज भी भारतीय शिक्षा पद्धति भारत की अवश्यकता के अनुरुप नहीं विकसित की जा सकी। यदि यह पूछा जाय कि चिकित्सा, तकनीकी और प्रबन्धन आदि क्षेत्रों की शिक्षा संस्थानों के अतिरिक्त भारतीय शिक्षा की उपलब्धि क्या है? शिक्षा भारत को कैसी भावी पीढ़ी प्रदान कर रही है? शिक्षा का आज उद्देश्य क्या है? उच्च शिक्षा के उद्देश्य क्या हैं? विश्वविद्यालयी शिक्षा में सामाजिक-मानविकी पाठ्यक्रमों की प्रासंगिकता क्या है? ऐसे प्रश्नों का उत्तर शायद ही मिल पाये। प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक चल रहे परम्परागत

शिक्षा के पाठ्यक्रम और शिक्षा तंत्र का ढांचा पूर्णतः अनुपयोगी और अप्रासांगिक बनता जा रहा है।

उच्च शिक्षा केन्द्रों में न तो ज्ञान की प्राप्ति हो पा रही है और न ही चरित्र का विकास हो पा रहा है। 'प्रवेश', 'परीक्षा' और 'परिणाम' तक पूरी उच्च शिक्षा सिमट गयी है। स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की स्थापना उच्च शिक्षा के पतन में 'सोने पे सुहागा' सिद्ध हो रही है। उच्च शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने के पवित्र उद्देश्य से स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की स्थापना की नीति की शव यात्रा में लगभग पूरा शैक्षिक समाज शामिल हो चुका है। अतः स्नातक-स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों की पढ़ाई का जो तमाशा हमने बनाया है, वह किसी से छिपा नहीं है। दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध लगभग सवा सौ स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों पर 'ईमला बोलकर लिखाये जाने' जैसी नई तकनीक के सामूहिक नकल का आरोप और तीन दर्जन महाविद्यालयों में इसकी पुष्टि उच्च शिक्षा की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करता है। विश्वविद्यालय के प्रशासनिक भवन में स्ववित्त पोषित महाविद्यालयों के कुछ प्रबन्धकों और कर्मचारियों के बीच 'प्रवेश संख्या' आदि को लेकर मारपीट, एक स्ववित्तपोषित महाविद्यालय में परीक्षा के दौरान विश्वविद्यालय के सचल दस्ते को बन्धक बनाने तथा सचल दस्ते के प्रमुख को मारने-पीटने की घटना स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में उच्च शिक्षा के पतनोन्मुख होने की ही घंटी है। दूसरी तरफ विश्वविद्यालय से लेकर राज्य सरकार तक व्याप्त भ्रष्टाचार, नियम-परिनियम की जटिलता और सरकार द्वारा सम्बद्धता हेतु घोषित 'रेट' से होकर शिक्षा संस्थान की स्थापना सेवा के लिए की जायेगी, यह कल्पना भी बेमानी है।

किन्तु उच्च शिक्षा की शव-यात्रा में कफन का सौदा करने वालों की भीड़ के बीच ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं है जो दुःखी हैं, चिन्तित हैं और भारत के लिए भारत केन्द्रित सोद्देश्यपूर्ण उच्च शिक्षा की पुनर्प्रतिष्ठा हेतु प्रयत्नशील हैं। ऐसे स्ववित्तपोषित महाविद्यालय भी चल रहे हैं, जो कई मायनों में वित्तपोषित महाविद्यालयों से वेतन के अलावा किसी मामले में कम नहीं है। वस्तुतः उच्च शिक्षा आज स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के हवाले सौपी जा चुकी है। उल्लेखनीय है कि दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध अशासकीय महाविद्यालयों की संख्या मात्र ३१ है, राजकीय महाविद्यालय ११ हैं तो स्ववित्तपोषित महाविद्यालय लगभग २०१ हैं। उच्च शिक्षा स्ववित्तपोषित महाविद्यालय की स्थिति एवं उसके स्वरूप से पूर्णतः प्रभावित है अतः इस संदर्भ में उच्च शिक्षा की स्थिति पर विचार-विमर्श एवं एक स्वस्थ प्रारूप निर्माण करने की आवश्यकता महसूस करते हुए आगामी **५ मार्च २०१० को महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर में 'उच्च शिक्षा की स्थिति : स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के सन्दर्भ में' विषय पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन तय किया गया है।** प्रातः ८.३० बजे से प्रारम्भ कार्यशाला निम्नवत समय-सारणी के अनुसार सम्पन्न हुयी।

अल्पाहार एवं चाय - ८.३० बजे		
प्रथम सत्र	प्रात : ०९.३० से पूर्वाह्न ११.०० बजे	स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की स्थिति
द्वितीय सत्र	पूर्वाह्न ११.३० से अपराहन ०१.०० बजे	समाज, सरकार एवं विश्वविद्यालय की भूमिका
	भोजन - ०१.३०	
तृतीय सत्र	०३.०० से ०४.३०	समस्या और समाधान

कार्यशाला के विचारणीय बिन्दु

प्रथम सत्र : स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की स्थिति - गत एक दशक में बड़ी संख्या में स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के खुलने के कारण, शिक्षा बाजार के हवाले, महाविद्यालय के मानक पूर्ण करने में व्यावहारिक संकट, प्रबन्ध तन्त्र, प्राचार्य, शिक्षक की स्थिति, उच्च शिक्षा में शिक्षार्थी।

द्वितीय सत्र : स्ववित्तपोषित महाविद्यालय में समाज, सरकार एवं विश्वविद्यालय की भूमिका-वर्तमान समय में सामाजिक सत्ता का प्रभाव, समाज सत्ता कमजोर, भ्रष्टाचार को सामाजिक स्वीकृत, सामूहिक जीवन का ह्रास, परिणामतः लोक-लाज का भय समाप्त। भ्रष्टाचार के दलदल में सरकार, सरकार द्वारा भ्रष्टाचार को खुला समर्थन, उच्च शिक्षा एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालय भ्रष्टाचार के शिकार, सरकारी भ्रष्टाचार से स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों को भ्रष्टाचार की खुली छूट, प्रेरणा और साहस प्राप्त, परिणामतः अधिकांश स्ववित्तपोषित महाविद्यालय शिक्षा केन्द्र की जगह बाजार की दुकान के रूप में प्रतिष्ठित। विश्वविद्यालय भी समाज-सरकार के सभी नाजायज तरीकों का सहयात्री, बाबूतन्त्र पूर्णतः प्रभावी।

तृतीय सत्र : समस्या और समाधान -स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों को उच्च शिक्षा केन्द्र की गरिमा एवं प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं, प्राचार्यों-शिक्षकों की स्थिति दैनिक मजदूर से भी बदतर, सामूहिक नकल, मानकों की अनदेखी कर भ्रष्टाचारियों के आगे नतमस्तक होना अथवा भ्रष्टाचारी तन्त्र का हिस्सा बनना। समाधान-प्रबन्ध तन्त्र सेवा और यश के लिए महाविद्यालय चलाएं। मानक पूरा करें, गुणवत्ता युक्त शिक्षा संस्थान विकसित करने का प्रयास, भ्रष्टाचार के खिलाफ खड़ा हो, नकल को कड़ाई से रोकें, प्राचार्य और शिक्षक अपनी गरिमा की स्वयं रक्षा में आगे आएं, प्रबन्ध तन्त्र के सहयोगी बनें, कठपुतली नहीं, आदि। (उपर्युक्त प्रपत्र सभी को पूर्व में भेजा गया)

प्रस्ताव

१. स्ववित्तपोषित महाविद्यालय -

(क) सीट के बराबर ही प्रवेश लें।

(ख) पठन-पाठन का माहौल विकसित कर महाविद्यालय परिसर को शिक्षा संस्कृति के अनुरुप विकसित करें।

(ग) पूर्णतः नकल विहीन परीक्षा सम्पन्न करायें और अपनी प्रासंगिकता एवं विश्वसनीयता सिद्ध करें।

२. महाविद्यालयों को शिक्षा एवं संस्कार देने का केन्द्र बनाएं।

३. महाविद्यालयों को मानकानुसार विकसित किया जाय तथा प्रबन्धतन्त्र द्वारा शिक्षकों एवं शिक्षणेत्तर कर्मचारियों को कम से कम मूलवेतन के बराबर वेतन दिया जाय।

४. स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के शिक्षकों तथा शिक्षणेत्तर कर्मचारियों का वेतन सरकार दे।

५. स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में शुल्क का स्पष्ट ढाँचा निर्धारित हो।

६. विश्वविद्यालय द्वारा अनुमोदित शिक्षकों को बिना किसी भेद-भाव के शिक्षकों जैसा ही परीक्षक बनाया जाय।

परिचर्चा में सहभाग

१.	प्रो. रामअचल सिंह,	पूर्व अध्यक्ष, उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग, उत्तर प्रदेश एवं पूर्व कुलपति, राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद
२.	डॉ. कन्हैया सिंह,	पूर्व कार्यकारी अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश भाषा संस्थान, लखनऊ
३.	डॉ. वेदप्रकाश पाण्डेय,	पूर्व प्राचार्य एवं प्रतिष्ठित साहित्यकार
४.	डॉ. मयाशंकर सिंह,	प्रदेश अध्यक्ष, प्राचार्य परिषद् उत्तर प्रदेश, प्राचार्य-दिग्विजयनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गोरखपुर
५.	डॉ. ओंकारनाथ मिश्र,	अध्यक्ष प्राचार्य परिषद्, दी.द.उ.गो.वि.वि.गोरखपुर से सम्बद्ध महा.
६.	डॉ. श्रीभगवान सिंह,	महामंत्री, गोरखपुर विश्वविद्यालय सम्बद्ध महाविद्यालय शिक्षक संघ
७.	डॉ. सन्तोष मणि त्रिपाठी,	महामंत्री, प्राचार्य परिषद्, दी.द.उ.वि.गोरखपुर से सम्बद्ध महा.
८.	डॉ. शैलेन्द्र प्रताप सिंह,	प्रभारी स्ववित्त पाठ्यक्रम, दिग्विजयनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय,गोरखपुर
९.	डॉ. कृष्ण मुरारी पाल,	प्राचार्य, द्रोपती देवी विन्ध्याचल महाविद्यालय, अहिरौली, गोरखपुर
१०.	डॉ. गोविन्दशरण सिंह,	प्राचार्य, अखिल भाग्य महाविद्यालय, रानापार, गोरखपुर
११.	डॉ. श्रीराम यादव,	प्रवक्ता, बापू पी.जी. कालेज, पीपीगंज, गोरखपुर
१२.	डॉ. श्रीराम चौहान,	प्रवक्ता, बापू पी.जी. कालेज, पीपीगंज, गोरखपुर
१३.	श्री सुनील प्रसाद,	प्रवक्ता, बापू पी.जी. कालेज, पीपीगंज, गोरखपुर
१४.	श्री नीलाम्बुज सिंह,	प्रवक्ता, वीरबहादुर सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हरनहीं, गोरखपुर
१५.	डॉ. विजय कुमार चौधरी	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
१६.	डॉ. रघुवीर नारायण सिंह,	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
१७.	डॉ. स्नेहलता त्रिपाठी,	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
१८.	डॉ. शिवकुमार बर्नवाल,	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
१९.	डॉ. अविनाश प्रताप सिंह,	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
२०.	डॉ. शालिनी सिंह,	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
२१.	श्री लोकेश कुमार प्रजापति,	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
२२.	श्रीमती कविता मन्ध्यान,	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
२३.	डॉ. अभय कुमार श्रीवास्तव,	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
२४.	डॉ. प्रवीन्द्र कुमार,	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
२५.	श्री प्रकाश प्रियदर्शी,	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
२६.	डॉ. राजेश शुक्ल,	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
२७.	श्री सत्यप्रकाश सिंह,	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
२८.	डॉ. आरती सिंह,	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
२९.	सुश्री गरिमा सिंह,	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
३०.	श्री दीपनारायण त्रिपाठी,	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
३१.	श्री श्रीकान्त मणि त्रिपाठी,	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
३२.	श्री मनोज वर्मा,	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
३३.	श्री नन्दन शर्मा,	प्रवक्ता, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर
३४.	डॉ. प्रदीप राव,	प्राचार्य, महाराणा प्रताप महाविद्यालय, जंगल धूसड़, गोरखपुर

परिचर्चा

प्रो. रामअचल सिंह –

किसी भी राष्ट्र की गुणवत्ता उस राष्ट्र के नागरिकों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। नागरिकों की गुणवत्ता उस राष्ट्र के शिक्षा की गुणवत्ता पर निर्भर होती है और शिक्षा की गुणवत्ता शिक्षकों की गुणवत्ता के आधार पर तय होती है। उच्च शिक्षा का वर्तमान परिवेश में जब भी विचार किया जायेगा तो स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के महत्त्व को स्वीकार करना ही पड़ेगा। दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर से सम्बद्ध महाविद्यालयों के आकड़ों पर गौर करें तो ८३ प्रतिशत महाविद्यालय स्ववित्तपोषित हैं। इनमें वे पाठ्यक्रम शामिल नहीं हैं जो अशासकीय अर्थात् राज्य द्वारा वित्तपोषित महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालय में स्ववित्तपोषित पाठ्यक्रम संचालित हैं। शायद ही कोई महाविद्यालय बचा हो जहाँ कोई न कोई स्ववित्तपोषित पाठ्यक्रम संचालित न हो रहा हो। ऐसे में अब स्ववित्तपोषित महाविद्यालय एवं पाठ्यक्रम ही उच्च शिक्षा की गुणवत्ता का मानक निर्धारित करेंगे। इसलिए स्ववित्तपोषित शिक्षण संस्थानों के प्राचार्यों, शिक्षकों और प्रबन्धकों का दायित्व बढ़ जाता है। किन्तु दुर्भाग्यवश अधिकांश स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों (बी.ए., बी.एस-सी., बी.काम., एम.ए., एम.एस-सी आदि पाठ्क्रम संचालित करने वाले) की भूमिका उच्च शिक्षा को पतनोन्मुख करने की हो चुकी है। इनमें मानक से कई गुना अधिक प्रवेश, अर्ह एवं योग्य शिक्षकों का अभाव, परिसर में अध्ययन-अध्यापन का माहौल नहीं, नकल कराने की होड़, अच्छा परिणाम दिखाकर प्रवेशार्थियों की संख्या में येन-केन प्रकारेण बृद्धि का प्रयास स्ववित्तपोषित संस्थानों की उच्च शिक्षा के प्रति नकारात्मक भूमिका के संकेत हैं। यद्यपि कि परीक्षार्थियों की कापियों की मूल्यांकन पद्धति भी दोषपूर्ण हो चुकी है। ग्रहण तो पूरी शिक्षा व्यवस्था पर लगा हुआ है तथापि स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की नकारात्मक भूमिका ने उच्च शिक्षा के पतन की गति बढ़ा दी है।

राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद में २००१ से २००४ तक मैं कुलपति था, तो स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के प्राचार्यों-शिक्षकों का वेतन जानकर हैरान रह गया। दो हजार रुपये से पाँच हजार रुपये माह का वेतन प्राचार्यों अथवा शिक्षकों को प्राप्त होता था। बहराइच के एक महाविद्यालय में ३५० रु. प्रति लेक्चर प्रति महीना दिया जाता था। प्राध्यापक को प्रतिदिन तीन लेक्चर लेना होता था, इस प्रकार कुल वेतन १०५० रु. मिलता था। यह स्थिति दुःखद है, भयावह है। एक मजदूर आज डेढ़ सौ रुपया प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी पाता है। ऐसे में महाविद्यालयों में किसी योग्य शिक्षक के टिकने तथा गुणवत्तायुक्त शिक्षा की कल्पना कैसे की जा सकती है। शिक्षकों को जीविकोपार्जन उपलब्ध न कराने तक हम कैसे यह कह सकते हैं कि शिक्षा की गुणवत्ता बनाये रखने में सहयोग करें। ऐसी स्थिति में शिक्षक गुणवत्ता के बारे में सोच भी नहीं सकता है। यू.जी.सी. का भी निर्देश है कि कम से कम न्यूनतम और अधिकतम मूल वेतन का औसत स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के शिक्षकों को मिलना चाहिए। राज्य सरकार को इस सन्दर्भ में गम्भीरता से विचार करना चाहिए।

Dr. Maya Shankar Singh-

Formal beginning of Higher Education system in the modern sense started in 1857 in India with the launching of three Presidency Universities in Bombay, Calcutta and Madras. This was prompted by the significant Charles Wood's dispatch of 1854 to the Governor-General in India. At the time, the aim was to create a cadre of English Knowing clerical cadre to serve the colonial rule of British India. This Indian University system with colonial rootings, started off, with a limited objective of creating a clerical cadre and not to speak of laudable objective of higher education, viz., knowledge creation and knowledge dissemination.

Since Independence higher education has grown in the country substantially, now there are approximately 400 universities, 19,000 colleges, within estimated 125 lakh students enrolled in the higher education institutions. Merely increasing the number of higher educational institutions and their enrolment capacity will not achieve the national development goals without concurrent attention to quality of the educational system, its access to those who desire, and equity measures ensuring fair and impartial treatment of the disadvantaged sections of the society. It is worth here that in India, enrolments in higher education constitute hardly six percent of the age group population, which is very low as compared to 20-25 percent enrolments in advanced countries.

Progress and prospect of any country depends on the growth and development of higher education. Hence higher education in very essential for the proper use of human and other natural resources for the development and growth of Indian economy. However, it is not possible to utilize the abundant natural and resources properly due to lack of basic infrastructure and low investment in higher education. My investment in higher education is not only low inconsistent in growth. Therefore there is and urge to hike the investment in higher education form 3.2 percent of the GDP to seven to eight percent GDP to make it competitive and at par with inter higher education in the globalised scenario.

Like any other country in the world higher education in India is an important sector of national life. Because of large size of higher education (due to its population), huge amount of financial resources are required in running this system to the reasonable satisfaction of all concerned with higher education. During last 10 years in general and 5 years in particular, the focus of government has been shifted from higher education to primary education. This is primarily due to policy framework of the international agencies like World Bank and UNESCO. Investment (in the form of financial assistance of grant in aid) in higher education is now being weighed in terms of social and private returns in higher education is less than return in primary education. This is why many countries in the world have started reducing the government subsidy for higher education and have encouraged private bodies to come forward and to fill in the gap. Consequently private sector has come in a big

way to establish, finance and manage institutions of higher education in general and professional education in particular.

We are not yet accustomed to the concept of 'privatization' of 'self financing' of higher education to digest. It is our general perception that by allowing establishment of privatively or self financing institutions or courses in higher education, the government has some how encoached our right to get subsidised higher education. We deliberately try to forget the fact that since the beginning of the humanity, educational institutions have been opened and managed by individuals or private bodies. The term privatisation has been used in terms of managing or administering an institution-be it industrial or educational and not financing of institution as such. It is however true that till few years back, almost 90 percent of the expenditure of higher educational institutes were borne by the government through grant in aid or matching grant. Due to out of control population growth and consistently growing enrolment in higher education, the government is regularly withdrawing from the field of higher education under dictate from international bodies like Wood Bank, IFC etc. at the same time one should also know the fact that there is financial crunch at the government level due to poor or mismanaged policies and schemes and very low economic growth rate. The Constitution of India clearly and specifically directs the government (both central and state) to fulfill the social commitments towards poor and have-nots, for which huge amount of money is required and hence the drastic cut in financial assistance to higher education.

The concept of self financing institutions was pioneered by Dr. T.M. Pai, who advocated the establishment of well equipped and quality driven institutors of higher learning at places where colleges were few and ill equipped. Initially these types of institutions were established in the field of professional educational education i.e. Medical, Engineering Management along with complete infrastructure facilities and quality measures at the places where there is no such colleges or very few colleges. These institutions become so much famous and prestigious that every meritorious and woodworking student from every part of the country was willing to get admission there. These institutions were not the centre of criticism or cry at that time as is the case today. The success of these institutions knocked the ears of some 'ambitious but opportunist people' in association with politicians throughout the country. This led to the opening of not only professional institutions but also general higher educational institutions throughout the country. The shift in government policy to lay emphasis on primary education acted as catalyst measure' in opening of these self financing institutions in the field of Higher education.

We shall now concentrate our discussion on the term 'quality' Educationists have borrowed various terms and concepts from industry. Quality is also one such concept 'Quality' is usually defined as the totality of features and characteristics of higher education which both institutions

imparting higher education and individuals having received higher education should reflect. It is true that higher education in free India has grown tremendously in terms of quantity, however it is also true that higher educational institution in general and individuals (who have received higher education) in particular have been lacking the various quality measures. It is generally perceived and observed that most of the institutions imparting higher education today lack in terms of

(a) In frastructure facilities like building, library, laboratory, equipment plyaground, furniture etc.
(b) Level and standard of education, they are imparting.
(c) Fulfilling the needs and required of the society.
(d) Competiting their counterparts in global world.
(e) Willingness to adapt for change.
(f) Developing leadership qualities among its product.
(g) International comparability of standard, etc.

The agony is that neither teachers in these institutions are satisfied with their job nor the product of these institution (i.e. students) because of obsolete, outdated, irrelevant, unproductive and theoretical knowledge they are receiving. It is not that only self financing institutions are the sentry of such criticism but government aided or funded institutions are also sailing in the same boat. How then, self financing institutions alone are to be blamed for detoration in quality of education? If we recall our activities in various fields of like, we shall be able to note that we prefer our wards to get preprimary/primarysecondary education from self financing (private public or convent) schools; we prefer to buy a product of private multinational courier over post office. The list is incomplete and its purpose is to say that if privatization or non-government efforts are concerned, it is only higher education which has come under criticism from various quarters of the society. This leads us to conclude that we are not fair of objective in our approach. This also leads us to think that we are running blindly without seeing the reality. To me, reality is that there is a wide difference between the fees charged in these two types of institutions reality is that the proprietors of these institutions are minting money from these institutions and they do not spend money even on essential requirements of the institutions; reality is that inspite of clear cut provisions (rules and regulations) the management of these institutions do not recruit qualified teachers and do not pay full pay to the teachers; reality is that service conditions (including work culture) of the employees in these institution are not up to the mark as compared to their counterparts in government funded institutions and the like.

As stated above, the increasing pressure of enrolment of students aspiring higher education and shift in government policy to give more emphasis to primary education over higher education has given rise to opening of higher education institution without government financial assistance. We have to accept this reality. We can only aspire that these self financing

institutions should fulfill the needs of requirements of individual and society by adopting certain measures.

1. The fee of government aided or funded institutions should be increased substantial.
2. The teacher's job satisfaction is an important factor of quality measure. Therefore teachers of self financing institutions should be paid equal emoluments as their counterparts receive in aided institutions.
3. The teacher of self financing institutions must posses the same qualification as prescribed by UGC/State Government. A sub standard teacher can only produce a sub standard student.
4. The proprietors of self financing institutions should feel that running an educational institution is not a commercial venture. They owe certain responsibility towards society.
5. The poor (and have not) students in self financing institutions should be given scholarship to meet their expenses.
6. Meritorious students of these institutions should be charged lower fee irrespective of their income level.
7. The government should permit opening of self financial institutions only in the areas where there is no for few institutions or fulfill the eudcational needs of the area.
8. Some type of mechanism of check and balance should be developed and employed with full transparancy.

Reference :

1. Bates, R (2005) on the Future of Teacher Education Challenges, Context Content, Journal of Education of Teaching Manchester.
2. Periyasamy, P & Venkatesh, J (2004) Globalization of Higher Education Means for India University News 42(40).
3. Niladri Pradhan Research Scholar, U.G.C. (Net) Regional Institute of Education (N.C.E.R.T.) Bhubaneswer.
4. C. Trangamuthu Vice Changellor, Bharathidasan Univeristy Tiruehirappali. The Indian Higher Education : Retraspeets and Prospects.
5. A.S. Shiralashetti, Faculty Member P.G. Department of Commerce, Karnatak, University P.G. Centre Kodibagh. Karwar 58/303. Progress and prospects of Higher Education in India.
6. Indian Journal of Educational Research Vol-22, No-2 July-December 2003.
7. Dr. S.C. Agrawalf, Reader, Dept of Education C.S.J.M. University Kanpur. Self Financing in Higher Education and its quality.

डॉ. शैलेन्द्र प्रताप सिंह -

शिक्षा के दो पक्ष होते हैं। एक आंतरिक जिसमें पाठ्यक्रम आता है और दूसरा बाह्य, जिसमें शिक्षण पद्धति आती है। शिक्षण पद्धति के सन्दर्भ में विचार करते वक्त सबसे पहले हमारा ध्यान शिक्षण तन्त्र पर भी जाना चाहिए। शिक्षण तन्त्र से ही आखिरकार यह तय होता है कि शिक्षा की वास्तविक स्थिति क्या है और यह शिक्षा हममें कौन-कौन सी तब्दीली लाने में सक्षम है?

आजादी के बाद देश में विश्वविद्यालय, महाविद्यालय तथा विद्यार्थियों की प्रवेश संख्या

तेजी से बढ़ी है लेकिन दुर्भाग्य से वर्तमान में शिक्षा के मात्रात्मक प्रसार के साथ-साथ उसका गुणात्मक मूल्य धीरे-धीरे कम होता जा रहा है और कुछ विशेष केन्द्रों को छोड़कर अधिकांश शिक्षण संस्थायें डिग्रियॉ बांटने के केन्द्र बनकर ही रह गयी हैं। पिछले पंद्रह सालों से शिक्षा के प्रसार के नाम पर निजीकरण और व्यवसायीकरण का जो स्वरूप उभर कर सामने आया है, उसने शिक्षा को एक धंधे के रूप में प्रस्थापित किया है। इस धंधे से सबसे ज्यादा कुप्रभावित हुआ है शिक्षण तंत्र। क्योंकि, शिक्षण तंत्र की सबसे मजबूत कड़ी है-शिक्षक और जब निजीकरण के नाम पर शिक्षक की स्वायत्तता और पारिश्रमिक भुगतान दोनों पर ग्रहण लगा हो, ऐसे में आदर्श शिक्षक और सर्वोच्च शिक्षा की परिकल्पना ही बेमानी हो जाती है।

उक्त के आलोक में मैं यह सूचित करना मुनासिब समझता हूँ कि विद्यार्थियों के प्रवेश संख्या के दबाव को देखते हुए उत्तर प्रदेश सरकर ने अनुदानित महाविद्यालयों में ऐच्छिक रूप से संध्याकालीन कक्षायें चलाने हेतु आदेश पारित किया। सितम्बर १९९६ में दिग्विजयनाथ पी.जी. कालेज, गोरखपुर के प्रवेश समिति ने कुलपति महोदय से अनुमति प्राप्त कर कला संकाय में सांध्य कक्षा चलाने का निर्णय लिया। अक्टूबर १९९६ में मुझे प्राचार्य महोदय द्वारा सांध्य कालीन प्रभारी के पद की जिम्मेदारी दी गयी। अक्टूबर १९९६ से सितम्बर २००७ तक मुझे इस पद पर सेवा करने का अवसर मिला। सांध्य कालीन कक्षाओं को पढ़ाने के लिए शिक्षकों की अतिरिक्त नियुक्तियां की गयी और पठन-पाठन हेतु अलग से अपराहन २ बजे के बाद समय-सारणी सुनिश्चित की गयी। सांध्य कालीन कक्षा चलाने के पीछे जो प्रमुख मंशा थी, उसका स्वरूप कुछ इस प्रकार था-

१. इच्छुक विद्यार्थियों का प्रवेश।
२. प्रातः सत्र और सायं सत्र के रूप में दो पालियों में शिक्षण व्यवस्था के साथ अनुशासनिक व्यवस्था बनाये रखना।
३. शिक्षण कार्य हेतु इच्छुक योग्य बेरोजगार अभ्यर्थियों की नियुक्ति।
४. स्ववित्तपोषित के रूप में हुए अतिरिक्त आय से संध्याकालीन कक्षा सम्बन्धी सभी प्रकार के व्यय और सांध्य शिक्षकों के भुगतान की व्यवस्था सुनिश्चित करना।
५. संध्याकालीन कक्षाओं हेतु किये गये अतिरिक्त नियुक्तियों के द्वारा महाविद्यालय को सभी प्रकार के कार्य के लिए अतिरिक्त सहयोगियों का मिल जाना।
६. महाविद्यालय के लिए अतिरिक्त आय का स्रोत जिससे भवन निर्माण के साथ-साथ अन्य आवश्यक सामग्रियों के क्रय हेतु एक अतिरिक्त कोष की प्राप्ति।

सांध्य प्रभारी के रूप में जब मैं सांध्य कक्षा के परिवेश, उसके संचालन में अपने योगदान तथा संध्याकालीन कक्षा चलाने के उद्देश्य की समीक्षा करता हूँ तो इस बात का सन्तोष रहता है कि इच्छुक अभ्यर्थियों को प्रवेश भी मिला और उन्हें शहर के महाविद्यालय से स्नातक उपाधि लेकर अपने कैरियर को एक दिशा और दशा देने में सहयोग भी मिला। महाविद्यालय में प्रवेश कार्य से लेकर परीक्षा तक सभी प्रकार के कार्यों में सांध्य कक्षा के प्राध्यापक व तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी कर्मचारीगण अतिरिक्त सहयोगी के रूप में मिले लेकिन जो बात आज भी बेहद दुखी करती है वह

है सांध्य शिक्षकों के पारिश्रमिक भुगतान के प्रति अनवरत उपेक्षात्मक रवैया व सम्मान की दृष्टि से महाविद्यालय परिसर में दोयम दर्जे की स्थिति। १९९६ में जहां शिक्षकों का पारिश्रमिक भुगतान १५०० रूपये प्रतिमाह से प्रारम्भ हुआ वह आज १४ वर्ष बाद भी ४००० से लेकर ५६०० रू. के बीच ही है। कमोवेश यही स्थिति अन्य स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की भी है। महंगाई, बढ़ती आवश्यकतायें सांध्य प्राध्यापकों की जिम्मेदारियां और उनकी सामाजिक स्थिति को एक सम्मानजनक अवसर प्रदान करने में उन्हें दिया जाने वाला यह भुगतान कभी भी उनके पद और गरिमा के अनुरूप नहीं रहा। प्रारम्भिक समय में यह भुगतान मात्र उतने ही महीने का मिलता था जितने महीने सांध्य कक्षायें चलती थीं, बाद में इसे दस महीनों का भुगतान सुनिश्चित कर दिया गया। प्रत्येक सांध्य शिक्षक के चेहरे पर दो माह के पारिश्रमिक भुगतान न मिलने, बहुत ही कम राशि का भुगतान होने और महाविद्यालय व्यवस्था में सहयोग के लिए हमेशा दबाव में रहने की व्यथा साफ-साफ झलकती है। रही सही कमी तब पूरी हो जाती है जब विश्वविद्यालयीय परीक्षा व अन्य परीक्षाओं में बेचारा मानकर उनकी ड्यूटी लगाई जाती है। जब हम जमीनी हकीकत तलाशने की कोशिश करते हैं तो कुछ विचारणीय तथ्य सामने आते हैं यथा -

१. आज गलाकाट प्रतिस्पर्धा के दौड़ में विद्यार्थियों के लिए आध्यात्मिक उत्थान व आंतरिक प्रगति आदि के लिए कोई जगह शेष नहीं दिखती। इसीलिए कला संकाय में पढ़ाये जाने वाले अधिकांश विषय हासिये पर चले गये हैं और विद्यार्थी इन विषयों में अध्ययन हेतु अतिरिक्त मुहमांगी राशि देने को कतई तैयार नहीं हैं, जबकि विज्ञान संकाय की स्थिति थोड़ी ठीक और वाणिज्य संकाय, बी.एड. व बी.पी.एड. जैसे प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थिति फिलहाल सापेक्षिक रूप से ज्यादा ठीक है। जहां स्ववित्तपोषित संस्थायें सम्यक् शुल्क वसूल रही हैं।

२. बहुत ही कम स्ववित्तपोषित शिक्षण संस्थायें अपने आय का निश्चित अनुपात महाविद्यालय के विकास व शिक्षकों तथा शिक्षणेत्तर कर्मचारियों के भुगतान पर व्यय करती हैं। ऐसे प्रबन्धतंत्र साधुवाद के पात्र हैं। अधिकांश महाविद्यालय निजी प्रबन्धतंत्र की जागीर बने हुए हैं, जहाँ शोषण और उत्पीड़न का ताण्डव जारी है और जब तक सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर पहल नहीं होगी, शोषण और उत्पीड़न का यह दौर रुकने वाला नहीं है।

३. कुकुरमुत्तों की तरह निरन्तर उग रहे स्ववित्तपोषित संस्थानों में उच्च शिक्षा का स्तर बनाये रखना संदेहास्पद है। क्योंकि आज से तकरीबन बीस वर्ष पूर्व कर्नाटक में प्रारम्भ व्यवसायीकरण की यह बिमारी लगभग हर राजनेता का सपना बन गई है। धन उगाही व शोषण लगभग राजनेताओं की मानसिकता बन गई है।

भ्रष्ट राजनेताओं, शिक्षा माफियाओं और शिक्षा विभाग के अधिकारियों की तिकड़ी स्ववित्तपोषित अध्यापन व्यवस्था में शिक्षकों के उत्पीड़न व शोषण के लिए पूरी तरह जिम्मेदार है।

अन्त में यह तथ्य विचारणीय है कि क्या केन्द्र और राज्य सरकारें इस मकड़जाल के लिए कम दोषी हैं? उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बुनियादी ढांचागत सुधार क्या मात्र राधाकृष्णन आयोग, नरेन्द्र देव आयोग, कोठारी आयोग और राममूर्ति आयोग से लेकर यशपाल कमेटी की रपट से ही सम्भव है? यदि ऐसा ही होता तो उच्च शिक्षा में जड़ता व भ्रष्टाचार के जहर के फैलाव को रोकने

और उसकी मर्यादा को पुनः प्रतिष्ठित करने की जरूरत ही क्यों महसूस की जाती? आज इस बात की प्रबल आवश्यकता है कि तत्काल शिक्षा प्रणाली व शिक्षा तंत्र में गुणात्मक परिवर्तन किया जाय जिससे भारतीय शिक्षा शिष्ट, सभ्य व सामाजिकता के बोध से युक्त गुणधर्मिता के साथ आजीविका के क्षेत्र में समर्थ ऐसे युवाओं को तैयार करने में सक्षम हो जो राष्ट्रीय भावना व राष्ट्र प्रेम से युक्त हों। इसके लिए आवश्यक है कि पाठ्यक्रम व्यवहारिक हो, स्वायत्तता से युक्त योग्य शिक्षक हों और उच्च शिक्षा में अकादमिक क्रियाओं और आधुनिक तकनीकी के बीच उचित समन्वय हो तथा स्ववित्तपोषित की वर्तमान त्रासदी से अध्यापन व्यवस्था मुक्त हो।

हर्ष कुमार सिन्हा -

यह सचमुच दुर्भाग्यपूर्ण ही है कि अपने अस्तित्वमान होने के कुछ वर्षों के भीतर ही स्ववित्तपोषित महाविद्यालय का प्रयोग एक ऐसी चिंता में बदल गया है कि जिस पर संगोष्ठियों की जरूरत पैदा हो गयी है। ऐसा मानने वालों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है जो इस प्रयोग को उच्च शिक्षा की डगमगाती नाव में निरंतर बड़े होने सुराख की तरह देखने लगे हैं और सम्भवतः यही सबसे खतरनाक स्थिति है। मनुष्यों, वस्तुओं और संस्थाओं का बुरा होना दरअसल तब तक बुरा नहीं होता जब तक कि वे अपने बुरे प्रदर्शन के चलते अपनी अवधारणा को ही बुरा समझने जैसी परिस्थितियाँ निर्मित न कर दें। स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के प्रसंग में यह दुःखद स्थिति घटित हो चुकी है।

ऐसा क्यों हुआ और कौन से कारक इसे एक घातक रोग सा विस्तार दे रहे हैं इसके लिए जरूरी है कि हम इसकी विकास यात्रा में छिपी उन गम्भीर त्रुटियों को पहचानें जिसके चलते ऐसा हुआ। बीती सदी के आखिरी कुछ वर्ष दुनिया के साथ-साथ देश के लिए भी बेहद निर्णायक थे। जर्मनी की ऐतिहासिक दीवार टूट रही थी, शीत युद्ध खत्म हो रहा था, सोवियत संघ टूट रहा था तो भारत में भी बहुत कुछ निर्णायक घटित हो रहा था। मुक्त बाजार व्यवस्था आ रही थी और उसके आने के साथ-साथ 'वेलफेयर स्टेट' (कल्याणकारी राज्य) का 'फेयरवेल' हो रहा था। राज्य अपनी सरहदों के भीतर रहने वाले नागरिकों के कल्याण की अब तक चली आ रही जिम्मेदारियों से भागने लगा था और भागते हुए वह शिक्षा से लेकर स्वास्थ्य तक और विकास से लेकर वित्त तक सब जगह बाजार सजाता जा रहा था।

स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों का प्रयोग भी उसी सजावट का हिस्सा था जिसके जरिये सरकार एक साथ कई निशाने साध रही थी। नीतिगत दस्तावेजों में वह इसे शिक्षा का विस्तार बता रही थी ताकि हर किसी को उच्च शिक्षा प्रदान की जा सके और दूसरी तरफ वह बड़े निजी तथा विदेशी संस्थानों के भारत प्रवेश का रास्ता सुगम बना रही थी। संयोग से उस समय प्रदेश में 'सरकारी आशीष से प्रतिभा विस्फोट' का कालखण्ड था जब अस्सी-पचासी फीसदी परीक्षाफलों के चलते स्नातकातुर नौजवानों की लम्बी कतार लग गयी थी और हर कोई वित्तपोषित प्रयोग के औचित्य प्रमाणन में जुट गया था।

पर बहुत जल्दी ही इस प्रयोग की छवि बिगड़ने लगी। स्ववित्तपोषित महाविद्यालय नकल के गढ़, शिक्षकीय शोषण के अड्डे और ऐसी ए.टी.एम. मशीनों की तरह (कु)ख्यात हो गये जहां

से व्यवस्था की हनक का कार्ड डालकर कई बार पैसे निकाले जा सकते थे। ऐसी छवि बनने के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे-

१. अधिकांश ऐसे महाविद्यालय किसी सुविचारित, दीर्घकालीन चिंतन प्रक्रिया से प्रेरित प्रयोग न होकर विशुद्ध व्यावसायिक इरादों के परिणाम थे जिसका मकसद 'स्व' का 'वित्तपोषण' था।

२. अधिक से अधिक लाभार्जन की इस भावना के चलते भवनों पर तो ध्यान दिया गया मगर इन भवनों को विद्यालय में रुपांतरित करने वाले शिक्षकों की गुणवत्ता जानबूझकर उपेक्षित की गयी ताकि पैसे खर्च करने की बजाय बचाये जा सकें।

३. शुरुआत में प्रवेशार्थियों की भारी भीड़ (पास होने वालों का संख्या में असामान्य वृद्धि के चलते) के चलते ये महाविद्यालय चल निकले। अब इस 'स्वाद' को बरकरार रखने के लिए जरूरी हो गया कि परीक्षाफल भी बेहतर दिखे ताकि छात्रों की आमद में कमी न हो। ऐसा करने के दो ही रास्ते थे। जबरदस्त पढ़ाई या फिर जबरदस्त नकल। अधिकांश कालेजों ने दूसरा रास्ता ही चुना।

४. चूंकि ऐसे कालेजों की प्राणवायु 'वित्त' ही थी लिहाजा प्राचार्य की जगह प्रबंधक प्रमुख हो गया। व्याख्यानों से ज्यादा महत्वपूर्ण योजनायें होने लगीं। ऐसे में वहां के शिक्षक नागार्जुन की मशहूर कविता के दुःखहरन मास्टर की तरह तमाचे मारकर आदम के सांचे गढ़ने की बजाय इस घबराहट में जीने लगे कि कहीं उनकी किसी खराब बात से नाराज होकर कोई विद्यार्थी कालेज न छोड़ दे। छोड़ा तो फीस गयी और फीस गयी तो नौकरी का क्या मतलब?

५. जाहिर है ऐसी भिन्न वरीयताओं के चलते कालेज 'किसी भी कीमत पर दुकान चलती रहे' के सूत्र वाक्य वाले निर्जीव संस्थानों के बदलते चले गये जहां पढ़ाई नहीं थी, कार्यक्रम नहीं थे, आयोजन नहीं था और प्रवेश और परीक्षाकाल के अलावा विद्यार्थी नहीं थे।

६. इस स्थिति का लाभ उस तंत्र को मिला जो निरीक्षणकर्ता निकाय था। अब यह खुला रहस्य है कि ऐसे कालेजों की मान्यता के लिए ऊपर से नीचे तक किस तरह रुपया निर्णायक भूमिका निभा रहा है।

कारणों की सूची यहीं खत्म नहीं होती मगर उपरोक्त कारण इस प्रयोग की खराब छवि के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी कारक थे इसलिए स्वाभाविक रुप से सुधार की कोई भी प्रक्रिया बगैर इन रास्तों से गुजरे कामयाब भी नहीं होगी। मेरी समझ में ऐसे किसी भी व्यापक सुधार कार्यक्रम में निम्नलिखित बिंदुओं को जरुर शामिल किया जाना चाहिए -

(अ) ऐसे विद्यालयों की स्थापना के मानक न सिर्फ कड़े किया जायें बल्कि इन मानकों का परीक्षण भी ईमानदारी से कराया जाये। हम सभी को याद रखना होगा कि ऐसे निरीक्षणों के दौरान किसी कमी को अनदेखा करना हमें लाभ दिला सकता है पर हमारी पीढ़ियों का भविष्य खराब कर देगा। निरीक्षण कार्यों में लापरवाही का नजारा हम डीम्ड विश्वविद्यालयों में देख चुके हैं और स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में देख रहे हैं।

(ब) ऐसे महाविद्यालयों को भी समझना होगा कि सुख्यात होना दीर्घजीवी बनाता है और कुख्यात होना अल्पजीवी। जो अपने को जितना बेहतर संस्थान बनायेगा, वहां उतने ही लोग आकृष्ट होंगे। बहती गंगा में हाथ धोने वालों की संख्या, शुद्ध नकलचियों की तुलना में आठ गुनी ज्यादा होती है।

(स) ऐसे महाविद्यालयों को अपनी फाइलों पर रिश्वत के पहिए लगाने से बचना चाहिए और उसका एक ही तरीका है-ईमानदारी से काम। लिफाफे आपकी राह मुश्किल ही बनायेंगे, आसान नहीं।

(द) यह जरुरी है कि ऐसे महाविद्यालयों के शिक्षकों को सम्मानजनक मानदेय दिया जाना सुनिश्चित किया जाये। दो हजार-तीन हजार देकर आप किसी बेहतर शैक्षिक योगदान की कल्पना नहीं कर सकते।

(य) विश्वविद्यालय को चाहिए कि वह इन महाविद्यालयों की प्रवेश प्रक्रिया को बेहतर बनाने के लिए हर सम्भव मदद करे। इसमें सीटों का समय से निर्धारण और प्रवेश पत्रों का समय से वितरण शामिल है।

(र) विश्वविद्यालयों को सम्बद्ध महाविद्यालयों की एक आन्तरिक मूल्यांकन प्रणाली भी विकसित करनी चाहिए ताकि बेहतर और बुरे संस्थानों का श्रेणीकरण हो सके और स्ववित्तपोषित संस्थानों में से अच्छे विद्यालयों की प्रतिष्ठा स्थापित हो सके।

(ल) यद्यपि यह बहुत आसान नहीं है फिर भी ऐसे महाविद्यालयों को भ्रष्ट तंत्र के विरुद्ध संगठित प्रतिरोध करने के लिए खड़ा होना होगा। ऐसा नहीं हुआ तो उन्हें हर काम की कीमत अदा करनी पड़ेगी जो उनके आर्थिक ढांचे को भी प्रभावित करेगा।

डॉ. श्रीभगवान सिंह-

स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की वर्तमान स्थिति पर हम जब भी विचार-विमर्श करें तो हमें उनकी विवशताओं और विसंगतियों दोनों पहलुओं पर गम्भीरतापूर्वक ध्यान देना होगा। शिक्षण संस्थाओं के प्रांगण की आन्तरिक गतिविधियाँ-शिक्षा, परीक्षा, अनुशासन तथा अन्य पाठ्येतर गतिविधियाँ मूलतः प्राध्यापकों द्वारा ही सम्पादित की जाती है किन्तु स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की दुनियाँ में प्राध्यापकों को मिलने वाली सुख संविधाएँ और वेतनादि की जो बदतर स्थिति है उससे हम सभी अवगत हैं। ऐसे हालात मे सालों-साल अपनी रोजमर्रा की समस्याओं से जूझता हुआ शिक्षक विवेकसम्मत नैतिक आचरण करने के बजाय अपने प्राचार्य और प्रबन्धक के निर्देश पर नकल कराने के लिए विवश हो जाता है, यह एक कटु सत्य है। दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध लगभग दो सौ स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों पर 'इमला बोलकर लिखाये जाने' जैसी नई तकनीक के सामूहिक नकल का आरोप और तीन दर्जन महाविद्यालयों में इसकी पुष्टि स्वत्तिपोषित महाविद्यालयों की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत करता है। कुछ वानगी देखें ४३ में ४१ परीक्षार्थी नकलची निकले, धरे गए-हिन्दुस्तान ६ अप्रैल २००५। देवरिया के एक केन्द्र पर सामूहिक नकल, ४१ धरे गए - राष्ट्रीय सहारा ६ अप्रैल २००५। सोनपति महाविद्यालय में ३३ छात्राएँ पकड़ी गई, कक्ष निरीक्षिका के पर्स से नकल सामग्री निकली-राष्ट्रीय सहारा ०१ अप्रैल २००५। देवरिया के एक ही केन्द्र पर पकड़े गये ४३ नकलची, नकल महायज्ञ जारी-स्वतंत्र चेतना ६ अप्रैल २००५। उड़ाका दल पर पथराव, पुलिस सुरक्षा में लौटे शिक्षक। 33 Girls and an

invigilator booked for using unfair means-Hindustan Times 01 April 2005। उड़ाका दल ने पकड़ा विश्वविद्यालय ने बाइज्जत पास किया-हिन्दुस्तान २७ मार्च २००६। खलीलाबाद ने उड़ाका दल को बन्धक बनाया-युनाइटेड भारत २८ अप्रैल २००६। ये अखबारी कतरने पिछले वर्षों में विश्वविद्यालयीय परीक्षा का छोटा सा ट्रेलर मात्र हैं और यदि बीमारी के लक्षण ही इतने गम्भीर हैं तो उसकी गहराई का अन्दाजा आसानी से लगाया जा सकता है।

वित्तीय सहायता प्राप्त और स्ववित्तपोषित संस्थाओं में मूलतः दो ही अन्तर साफ तौर पर दिखाई पड़ता है-वेतन विसंगति एवं परीक्षा की शुचिता। इनमें दोनों तत्व एक दूसरे को गहराई से प्रभावित करते हैं। इस विश्वविद्यालय के लगभग २४५ महाविद्यालयों में से लगभग सभी महाविद्यालयों को परीक्षा केन्द्र बनाया जाता है। परीक्षा केन्द्र बनाने का जो महत्वपूर्ण आधार बताया गया वह था उस महाविद्यालय की छात्र संख्या। आप स्वतः विचार कर सकते हैं कि क्या मात्र संख्या के आधार पर किसी महाविद्यालय को परीक्षा केन्द्र बनाना तर्कसंगत और सन्तुलित निर्णय है? क्या इसके लिए उस महाविद्यालय का परीक्षा सम्बन्धी रिकार्ड, उस परीक्षा केन्द्र पर पिछले तीन या पाँच वर्षों में परीक्षा सम्बन्धी शुचिता और गुणवत्ता का स्तर, उस संस्था के सम्बन्ध में उड़ाका दलों और पर्यवेक्षकों की रिपोर्ट क्या कोई अर्थ नहीं रखती है? आखिर परीक्षा केन्द्र बनाने में परीक्षा सम्बन्धी खूबियों और खामियों का मूल्यांकन किया जाना जरूरी है या छात्र संख्या का। छात्र संख्या आधार बन सकती है यदि उस संस्था को कोई सरकारी या गैर सरकारी अनुदान देने का निर्णय लेना हो। परीक्षा केन्द्र बनाने का यह निर्णय तो मुझे वैसा ही लगता है जैसे किसी से दस ईमानदार आदमियों को चुनने के लिए कहा जाए और चयनकर्ता शहर के दस मोटे-मोटे आदमियों को लाकर खड़ा कर दे और मान ले कि यही दस सबसे ईमानदार हैं।

विश्वविद्यालय के परीक्षा तन्त्र से जुड़े हुए लगभग सभी लोगों को पता है कि इस विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कौन से महाविद्यालय और उनके प्रबन्धक किसी भी हद तक जाकर नकल कराना, छात्र संख्या बढ़ाना और अपनी शैक्षणिक फैक्ट्री को ज्यादा से ज्यादा कमाऊ बनाना अपना अधिकार समझते हैं। ऐसे महाविद्यालय जहाँ पिछले दसों साल से शायद ही कोई उड़ाका दल बिना अपमानित और प्रताड़ित हुए सुरक्षित वापस आया हो उसे भी परीक्षा केन्द्र बनाया गया है, जिस परीक्षा केन्द्र पर नकल कराने के लिए आतुर शिक्षकों द्वारा उड़ाका दल के संयोजक को पिस्टल लगा दी गयी हो उसे भी परीक्षा केन्द्र बनाया गया है, उड़ाका दल द्वारा एक ही पाली में पैतालिस में से तैंतालिस छात्रों के रिस्टिकेट होने, एक ही पाली में जहाँ तैंतीस छात्राएँ और कक्ष निरीक्षिका क्रमशः नकल करते और कराते हुए पकड़ी गयी हों उस महाविद्यालय को भी परीक्षा केन्द्र बनाया गया है और वह स्वनामधन्य महाविद्यालय भी परीक्षा केन्द्र बनाया गया है जहाँ के प्रबन्धतन्त्र ने विश्वविद्यालय द्वारा भेजे गये तीन-तीन उड़ाका दलों को पाँच घण्टे तक बन्धक बनाया था, दल के सदस्यों को पैशाचिक तरीके से पीटा गया था और दल की महिला सदस्य को कई घण्टे तक धूप में रखकर प्रताड़ित किया गया था। ऐसे भ्रष्ट कालेजों को परीक्षा केन्द्र बनाकर विश्वविद्यालय प्रशासन खुद कटघरे में खड़ा है। परीक्षातन्त्र का ईमान ऐसे भ्रष्ट महाविद्यालयों के लिफाफों में क्यों दब जाता है? आखिर विश्वविद्यालय क्यों पुरस्कृत करता है इन नकल माफियाओं को? उच्च शिक्षा

के नाम पर विश्वविद्यालयीय परीक्षा के साथ खुल्लम-खुल्ला बलात्कार करने वाले इन परीक्षा केन्द्रों को ध्वस्त करके विश्वविद्यालय प्रशासन को समाजहित में उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए?

परीक्षा समिति की बैठक में जब वह मुद्दा आया जिसमें एक परीक्षा केन्द्र पर विश्वविद्यालय द्वारा भेजे गये तीनों उड़ाका दलों को दर्जनों असलहाधारी माफियाओं द्वारा बन्धक बनाया गया, मारा-पीटा गया और अब उड़ाका दलों और गुआक्टा के पदाधिकारियों ने उक्त अपराधी प्रबन्धतंत्र और उस महाविद्यालय के खिलाफ सख्त कार्यवाही करने का दबाव बनाया तो इस विश्वविद्यालय प्रशासन ने उड़ाका दलों और गुआक्टा नेतृत्व के विरूद्ध ही मुकदमा दर्ज करा दिया। धन्य है यह विश्वविद्यालय जहाँ अपराधियों को नहीं बल्कि अपराधियों का विरोध करने वालों को अपराधी घोषित कर दिया जाता है।

साँप ने काटा जिसे उसकी तरफ कोई नहीं।
लोग साँपों की तरफ हैं या सपेरों की तरफ।।

यही इस विश्वविद्यालय का कटु यथार्थ और नंगी हकीकत है। विश्वविद्यालय प्रशासन की बेचारगी, निर्लज्जता और नाकारापन से अच्छे और ईमानदार शिक्षकों में कुण्ठा, हताशा और निराशा व्याप्त है। ऐसे में नकलमुक्त और शुचितापूर्ण परीक्षा कराने का एक ही आधार हो सकता है कि मनी और मसल पॉवर के दम पर कुछ भी कर गुजरने की हिमाकत करने वाले इन नकल माफियाओं और उच्च शिक्षा के बलात्कारियों की मुश्कें कस दी जाएँ, भ्रष्ट केन्द्र तोड़े जाएँ और परीक्षा केन्द्रों का निर्धारण छात्रों की संख्या नहीं उस कालेज की परीक्षा संबंधी गुणवत्ता के आधार पर किया जाए।

नकल तब और नकल अब

परम्परागत रूप से परीक्षाओं में नकल करने की प्रवृत्ति उस मनोदशा की ओर संकेत करती है जिसमें नजर बचाकर छुप-छुपाकर कुछ लाभ ले लेने की भावना निहित होती है भले ही वह नैतिक आचरण की परिधि का उल्लंघन करती हो। परीक्षाओं में नकल का स्वरूप और उसकी प्रकृति पिछली शताब्दी के आठवें दशक तक इसी रूप में सामने आती थी। आठवें दशक तक नकल करना कक्ष परिप्रेक्षक या उड़ाका दल से छुप छुपाकर कुछ अंकों का लाभ पाने के लिए की जाने वाली एकल कार्यवाही होती थी और पकड़े जाने पर वह परीक्षार्थी शर्मिंदगी और भय का शिकार होता था। भय और शर्मिंदगी दोनों स्तर पर, स्कूल-कालेज स्तर पर और पारिवारिक स्तर पर भी। उस समय की नकल में अधिकांशतः वह छात्र ही जिम्मेदार होता था और किसी कक्ष में नकल करते हुए छात्र का पकड़ा जाना उस कक्ष के परिप्रेक्षक और केन्द्राध्यक्ष के कष्ट और आक्रोश का कारण बनता था।

नवें दशक के साथ शिक्षा में भूमण्डलीकरण और निजीकरण की दस्तक सुनायी पड़ने लगी। सरकारें शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे कार्य जो किसी भी लोक कल्याणकारी राज्य की परिकल्पना के प्रमुख आधार थे, से भी अपने को विरत कर ली। परिणामस्वरूप स्ववित्तपोषित विद्यालयों का प्रादुर्भाव हुआ जहाँ छात्रों की फीस से ही सब कुछ होना है। ऐसे में छात्र संख्या का बढ़ना-घटना इन स्ववित्तपोषित संस्थाओं के लिए जीवन-मरण का प्रश्न बन गया और यह पूरे उत्तर भारत का दुर्भाग्य ही है कि छात्र और उसका अभिभावक नकल करके भी अच्छे अंक प्राप्त करने में दूरगामी

लाभ न सही तात्कालिक लाभ के रूप में देखने लगे। ऐसे में नकल का स्वरूप अब छात्र के व्यक्तिगत प्रयास की सीमा से बाहर निकलकर संस्थागत हो गया अर्थात् अब यह छात्र, शिक्षक, प्राचार्य और प्रबन्धक का सामूहिक और नियोजित अभियान बन गया और इसमें बाधा पहुँचाने वाला इन सबका शत्रु बन गया। चूँकि छात्र संख्या ही किसी प्रबन्धक की आय का प्रमुख स्रोत होती है। अतः नकल रोकने का कोई भी प्रयास ऐसे प्रबन्धकों द्वारा परीक्षा की शुचिता और उसकी पवित्रता बचाने का प्रयास नहीं अपितु अपने आर्थिक हितों पर आक्रमण माना जाता है जिसके विरुद्ध ऐसे प्रबन्धक किसी भी सीमा तक जा सकते हैं और इसीलिए पिछले वर्षों में बाहर से भेजे गये केन्द्राध्यक्षों और उड़ाका दलों पर हमले ज्यादा तेज हुए हैं क्योंकि वे हमले शिक्षा की दुकानदारी करने वाले प्रबन्धकों द्वारा ही प्रायोजित होते हैं।

मेरे इस कथन का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि सभी स्वत्तिपोषित विद्यालय और उसके प्रबन्धक खराब हैं और सभी वित्तीय सहायता प्राप्त महाविद्यालय शुचिता पूर्ण परीक्षा की गारण्टी देते हैं। जैसे कोई भी सद्गुण या दुर्गुण एक व्यक्तिनिष्ठ प्रत्यय है, ठीक यही बात संस्थाओं के साथ भी है। फिर भी वित्तीय सहायता प्राप्त महाविद्यालयों में नकल का मौलिक कारण वह नहीं है जो स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में व्याप्त हैं। वहाँ नकल का कारण छात्र-अभिभावक-प्राचार्य और प्रबन्धक की सामूहिक दुरभिसन्धि और प्रबन्धक का आर्थिक संजाल न होकर प्राचार्यों में मजबूत और प्रेरक नेतृत्व का अभाव, प्राध्यापकों में दायित्व बोध का अभाव, दृढ़ इच्छाशक्ति की कमी, छात्रों की उद्दण्डता का भय और प्राचार्यों तथा प्राध्यापकों में टीम भावना का अभाव होता है। अन्ततः नकल अब चूँकि एक सामूहिक दुरभिसन्धि का रूप ले चुकी है इसलिए इसे रोकने के लिए भी अब सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है।

समाधान :

१. सरकारी या गैर सरकारी अनुदान का आधार तो छात्र संख्या हो सकती है किन्तु परीक्षा केन्द्र बनाने का आधार तो उस कालेज संबंधी रिकार्ड, उड़ाका दलों, पर्यवेक्षकों आदि की रिपोर्ट ही होनी चाहिए।

२. विश्वविद्यालयीय परीक्षा में विश्वविद्यालयीय प्राध्यापकों का उड़कादल कालेजों का और कालेज शिक्षकों का उड़ाकादल विश्वविद्यालय का दौरा करें।

३. विश्वविद्यालय प्रशासन गम्भीरतापूर्वक इस बात की जाँच कराये कि केन्द्राध्यक्षों, कक्ष परिप्रेक्षकों एवं उड़ाका दलों द्वारा पकड़े गये अधिकांश नकलची यू०एफ०एम० कमेटी द्वारा कैसे छोड़ दिये जाते हैं?

४. यह एक खुली सच्चाई है कि उड़ाका दलों पर होने वाले आक्रमण सामूहिक नकल कराने वाले संबंधित कालेज प्रशासन के द्वारा ही नियोजित एवं प्रायोजित होते हैं इसलिए ऐसे प्राचार्यों और प्रबन्धकों के विरूद्ध प्राथमिकी दर्ज होनी चाहिए।

५. सामूहिक नकल सिद्ध होने पर उस महाविद्यालय की सम्बद्धता समाप्त करने की कार्यवाही की जानी चाहिए।

६. पूर्वांचल फार्मूले के अन्तर्गत किसी भी स्ववित्तपोषित महाविद्यालय का परीक्षा केन्द्र स्वकेन्द्र

नहीं होना चाहिए और न ही दो महाविद्यालयों में पारस्परिक आदान-प्रदान करके केन्द्र बनाये जाने चाहिए। पूर्वांचल विश्वविद्यालय में यह प्रयोग पूरी तरह से सफल सिद्ध हो चुका है और मा० कुलाधिपति महोदय ने इसकी अनुशंसा अन्य सभी विश्वविद्यालयों को करते हुए परिपत्र भी जारी किया है।

उपरोक्त उपायों को ईमानदारी से लागू करते हुए यदि विश्वविद्यालय का परीक्षा प्रशासन खुद भी ईमानदार कोशिश करे तो स्ववित्त पोषित महाविद्यालयों में भी शुचितापूर्ण और नकलमुक्त परीक्षा करायी जा सकती है।

डॉ. संतोष कुमार त्रिपाठी -

स्ववित्तपोषित योजना का आगमन सम्भवतः उच्च शिक्षा में वित्त विहीन व्यवस्था को समाप्त करने के साथ-साथ वित्त की वैकल्पिक व्यवस्था करने, शैक्षणिक संस्थाओं की संख्या में वृद्धि तथा अधिकाधिक लोगों को उच्च शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य को पूरा करने के लिए हुआ। परिणामतः स्ववित्तपोषित संस्थाओं की संख्या में तो खूब इजाफा हुआ परन्तु अन्य समस्याएं बढ़ती गई।

वर्तमान में स्ववित्तपोषित योजना दो स्वरूप में कार्यरत है। एक तो उन विश्वविद्यालयों अथवा महाविद्यालयों में जहाँ किसी पाठ्यक्रम को पूर्व से ही अनुदान मिल रहा है। दूसरे वहाँ जहाँ पर सभी पाठ्यक्रम स्ववित्त योजना में चल रहे हैं। अनुदानित संस्थाओं में प्राचार्य तथा शिक्षणेत्तर कर्मचारियों की सेवा अनुदान से तथा शिक्षक स्ववित्तपोषित योजना से। परिणाम इस स्ववित्त पोषित योजना के प्राचार्य व शिक्षणेत्तर कर्मचारी सरकारी नियमानुसार वेतन भोगी हैं जबकि शिक्षक प्रबन्ध समिति को रोजगार मुहैया कराने के लिए धन्यवाद देते हुए सहर्ष प्रतिमाह रू. ३०००/- से रू. ८०००/- प्राप्त करते हैं। हालांकि हो सकता है कि कही पर इससे भी कम या ज्यादा मिल रहा हो। इसी प्रकार के कार्य के लिए इतनी ही योग्यता धारण करने वाला शिक्षक अनुदानित योजना में रू. ४०००० से रू. १००००००/- तक वेतन प्राप्त कर रहा है।

शिक्षण व्यवस्था : न्यूनतम वेतन पा कर पर भी स्ववित्तपोषित शिक्षक कही भी अनुदानित शिक्षक से कम कार्य नहीं करता है। यही नही रोजगार बना रहे, इसलिए उसे फुल टाइम संस्थान में रूकना भी पड़ता है। कहना अतिश्योक्ति न होगा कि स्ववित्तपोषित संस्थान वित्त व्यवस्था करने का साधन बनता जा रहा है जबकि शिक्षक बेचारा बनता जा रहा है। आखिर दोषी कौन? इसके उत्तर के लिए सरकार, विश्वविद्यालय, प्रबन्ध समिति व समाज की भूमिका पर नजर डालना समचीनी होगी।

सरकार की भूमिका : स्ववित्त पोषित योजना तो लागू कर दिया गया परन्तु इसे लागू करने के लगभग १० वर्ष बाद अध्यापक की परिभाषा जी.ओ. के माध्यम से सरकार ने बताया, वह भी माननीय हाईकोर्ट इलाहाबाद की याचिका सं. ५८८१ (एम.वी.)/२००२ के आदेशोपरान्त। इन संस्थाओं को अधिकतम शिक्षण शुल्क रू. ५०००/- लेने का आदेश भी है परन्तु अन्य कोई शुल्क लेने का नहीं। वर्तमान में २५% या इससे भी ज्यादा विश्वविद्यालय परीक्षा शुल्क के नाम पर ले लेता है। शासनादेश दिनांक ०६.०५.२००० तथा २६.०४.२००४ कहता है कि ७०%-८०% शिक्षण शुल्क वेतन में व्यय होगा। विचार करें कि जिस संस्था में अधिकतम शिक्षण शुल्क रू. ५०००/- लिया जाता है वहाँ पर रू. १०००/- परीक्षा शुल्क शेष ७५% वेतन में दिया जाए

तो संस्था कैसे चलेगी? दूसरे व्यावसायिक पाठ्यक्रम जैसे बी.एड., बी.पी.एड. को छोड़ दिया जाय तो बी.ए., बी.एस-सी., बी.काम. में २०००/- से ३०००/- रू. में प्रवेश लिया जा रहा है। प्रति एक वर्ग छात्र के लिए तीन शिक्षक की आवश्यकता पड़ती है। यदि प्रबन्धक तीन हजार रू. पर प्रवेश करे, परीक्षा शुल्क देने के बाद पूरा शुल्क वेतन पर व्यय कर दे तो भी रू. ५०००/- प्रति शिक्षक वेतन नहीं मिल सकता। जबकि अभी हाल ही में मा. हाईकोर्ट इलाहाबाद की लखनऊ बैच ने रि. १२६ of २०१० में आदेश किया है कि शिक्षण शुल्क का ७०%-८०% वेतन तो दिया ही जाए परन्तु समान पद पर आनुदानित शिक्षकों के समानान्तर न्यूनतम वेतन निर्धारण भी किया जाए। हालांकि इस संदर्भ में सरकार को अपना पक्ष २३.०३.२०१० तक रखना है। विचारणीय यह है कि मुमकिन कैसे होगा? दूसरा विरोधाभास यह है कि मा. हाईकोर्ट के आदेशोपरान्त सम्बद्धता तो स्थाई देने की व्यवस्था प्रारम्भ हो गई (सम्बद्धता स्थाई बिना स्थाई शिक्षक के नहीं हो सकता) पर शिक्षक के लिए ठेका प्रक्रिया भ्रष्टाचार को बढ़ावा नहीं दे रहा है तो फिर और क्या कर रहा है।

विश्वविद्यालय अनुदानित महाविद्यालय की भूमिका :

इस योजना के लिए अपनी-अपनी वित्त व्यवस्था मजबूत करने के लिए सभी विश्वविद्यालयों तथा आनुदानित महाविद्यालयों ने स्ववित्त पोषित योजना के पाठ्यक्रम लागू कर लिए। लेकिन इस हेतु शिक्षकों की समस्या पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। दी.द.उ.गो.वि.वि. ने २००४ जून में स्ववित्तपोषित योजना के लिए जो परिनियमावली बनाई उसमें कहीं भी शिक्षक को शिक्षक मानने जैसी कोई ठोस बात दिखती ही नही है। बहुत मुश्किल से तो परीक्षकत्व मिला है। जबकि नियुक्ति प्रक्रिया व योग्यता उसी प्रकार प्रतिस्थापित की गई है जैसे कि उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग या यू.जी.सी. या सरकारी तंत्र द्वारा किया जाता है। यहाँ तक की वरिष्ठता का निर्धारण भी इन शिक्षकों का नहीं होता है। अर्थात ये काम करें, घर जाएं, बात समाप्त। ये भूल जाएं कि डिग्री सेक्शन में उच्च शिक्षा धारी ये शिक्षक हैं। ये व्यवस्था आखिर कौन सा आइना दिखा रही है। ये विश्वविद्यालय या अनुदानित महाविद्यालय अपने यहाँ स्ववित्तपोषित पाठ्यक्रम खोल कर हर्षित हो रहे हैं, यू.जी. कालेज से पी.जी. कालेज अपने आप को कह रहे हैं। लेकिन ये स्ववित्त पोषित कालेज और उनमें कार्यरत शिक्षकों के प्रति समान भाव नहीं रख रहे हैं। अन्यथा विभिन्न समितियों विद्या परिषद्, कार्य परिषद् आदि तथा विभिन्न शिक्षक संगठनों में इन्हें भी अपना सदस्य बनाते।

समाज की भूमिका : लगभग ७५%-८०% छात्र स्ववित्तपोषित योजना में ही उच्च शिक्षा पा रहे हैं। इन ७५%-८०% छात्र के अभिभावक अर्थात् ७५%-८०% अभिभावक इस व्यवस्था से सीधे सम्बन्धित हैं। प्रवेश व परीक्षा उच्च शिक्षा की नियति होती जा रही है। इन अभिभावकों का भी विश्वविद्यालय व सरकार से प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से निश्चित ही सरोकार है परन्तु इनका उदासीन रवैया शायद यही कह रहा है कि ''जब पूरे कुएं में भाँग पड़ी तो फिर बात ही क्या करना बचा है।''

समाधान कैसे हो : व्यवसायिक या सीधे रोजगारोन्मुख पाठ्यक्रम में तो ठीक से शुल्क मिल रहा है परन्तु परम्परागत पाठ्यक्रम बी.ए., बी.काम., बी.एस-सी., एम.ए., एम.काम., एम.एस-सी.

की स्थिति दयनीय है मेरे विचार से निम्न कदम इसके समाधान के लिए उठाया जाना चाहिए।

१. यू.जी.सी. इन सभी कालेजों का जिनका धारा 2(F) में पंजीकरण तो हो रहा है परन्तु धारा 12(B) में नहीं, का धारा १२(B) में पंजीकरण करे तथा शोध कार्य व सेमिनार आदि के लिए अनुदान दे ताकि गुणवत्ता पूर्ण उच्च शिक्षा दिया जा सके।

२. विश्वविद्यालय इन शिक्षकों को नियमित शिक्षकों की भांति नैतिक सहारा देते हुए सभी समितियों कार्य परिषद्, विद्या परिषद् आदि अनेक समितियों में स्थान दे तथा इन शिक्षकों की वरिष्ठता का निर्धारण सुनिश्चित करे।

३. सरकार स्ववित्त पाठ्यक्रम में इस प्रकार शुल्क ढाँचा प्रस्तुत करें ताकि इन शिक्षकों को Grant in Aid शिक्षकों के समान वेतन व सुविधा मिल सके तथा संस्थान का विकास हो सके अथवा संस्थान के संचालन के विकास हेतु प्रबन्ध समिति को निर्धारित शुल्क लेने की अनुमति दे, शिक्षण शुल्क का निश्चित भाग ट्रेजरी/बैंक में जमा कराया जाए तथा वेतन भुगतान आदि सेवा शर्त सरकारी नियमानुसार सरकार के माध्यम से हो।

यद्यपि यहाँ पर स्ववित्तपोषित कालेजों की कुछेक समस्या व समाधान तो रखा गया है तथापि यह पूर्ण और अन्तिम नही है। इस हेतु एक उच्च अधिकार प्राप्त समिति का गठन सरकार द्वारा किया जाना चाहिए जिसमें इस व्यवस्था से जुड़े प्राचार्य और शिक्षक को भी शामिल करना चाहिए, फिर प्राप्त निष्कर्ष पर कार्य करना बेहतर हो सकता है।

डॉ. अभय कुमार श्रीवास्तव एवं शुभ्रा श्रीवास्तव -

सीमित संसाधन, तीव्र जनसंख्या वृद्धि एवं प्राथमिक शिक्षा की प्राथमिकता के कारण सरकार उच्च शिक्षा के प्रसार में यथोचित योगदान नहीं दे पाई है। ऐसी स्थिति में निजी संस्थाओं के द्वारा उच्च शिक्षा के प्रसार में महती योगदान दिया गया है। उच्च शिक्षा के निजीकरण की प्रक्रिया में उच्च शिक्षा का प्रसार तो हुआ है परन्तु गुणवत्ता प्रभावित हुई है। यह प्रसार तकनीकी व गैर तकनीकी दोनों ही क्षेत्रों में हुआ है।

वर्तमान में उच्च शिक्षा अत्यन्त दयनीय स्थिति में पहुँच गई है जिससे सामाजिक, सांस्कृतिक और औद्योगिक प्रासंगिकता पर प्रश्नचिन्ह लग गया है। 'वर्ल्ड बैंक' की रिर्पोट यह दर्शाती है कि भारत में हर वर्ष ०१.१० करोड़ युवा स्नातकों में से ६०% नौकरी के लायक ही नहीं है। यह स्थिति शिक्षा की गुणवत्ता को रेखांकित करती है। स्ववित्तपोषित संस्थाओं द्वारा इस प्रसार की प्रक्रियाओं में उच्च शिक्षा का पतन और विघटन हुआ जिसमें निजी संस्थाओं के विभिन्न घटक अपने-अपने स्तर से विघटन की प्रक्रिया को तीव्र से तीव्र करते जा रहे हैं।

प्रबन्ध-तन्त्र के स्तर से इन संस्थाओं को खोलने में निहित उद्देश्य तलाशने पर हम पाते हैं कि उनके गैर शैक्षिक उद्देश्य रहे हैं। यह उनकी पृष्ठ भूमि से भी स्पष्ट है कि वे या तो निजी संस्थान चलाने वाले विभिन्न स्तर के नेता, व्यवसायी, निर्माण कार्य में लगे ठेकेदार अथवा मिशनरी पृष्ठभूमि से सम्बन्धित होते हैं, जिनमें से अधिकांश की प्रायः अपनी कोई शैक्षिक पृष्ठभूमि भी नहीं होती है। जिनका उद्देश्य वास्तविक रूप में समाज पर अपनी पकड़ बनाना होता है, धार्मिक प्रसार करना व धन प्राप्ति होता है।

इस प्रक्रिया में वित्तपोषित एवं राजकीय संस्थाओं के शिक्षाविद् तथा उच्च शिक्षा अधिकारियों का नैतिक पतन, धन लोलुपता एवं भ्रष्टाचार भी इसके लिए कम जिम्मेदार नहीं है। महाविद्यालय की विवादित भूमि, उक्त भूमि का व्यवसायिक उपयोग, अपूर्ण मानकों के अयोग्य प्रवक्ताओं के बावजूद इन निजी महाविद्यालयों को मान्यता प्रदान करना, परीक्षाओं में कदाचार, भ्रष्टाचार, सीमित संख्या के बावजूद अधिक नामांकन की शिकायत पर भी त्वरित कार्यवाही न करना इसके कुछ कतिपय उदाहरण हैं।

इन महाविद्यालयों में प्राचार्य, प्रबन्ध-तन्त्र की कठपुतली की भांति कार्य करते हैं। जहाँ उन्हें अपने ऊपर और नीचे के बीच सामंजस्य स्थापित करना चाहिये, वहीं वह बढ़ चढ़ कर प्रबन्ध-तन्त्र के निहित उद्देश्यों को फलित करने हेतु नये-नये हथकण्डों का प्रयोग करते रहे हैं। चाहे कदाचार के सम्बन्ध में हो अथवा अधिक नामांकन हो अथवा विश्वविद्यालय के आदेशों के अनुपालन में शिथिलता। इन सभी में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

इस सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में प्रवक्ताओं का अतिशय शोषण होता है। उन्हें अति अल्प पारिश्रमिक पर अत्यधिक समय महाविद्यालय को देने हेतु विवश किया जाता है। परीक्षाफल का उनकी गर्दन पर तलवार की भांति लटकना, हर बात पर निष्कासन की धमकी मिलने के बावजूद, असुरक्षा की भावना से ग्रस्त रहते हुए असीम मजबूरी तथा प्रताड़ना को सहते हुए भी चाटुकारिता करते हुए पढ़ाने को विवश होना पड़ता है। विडम्बना यह है कि जिसे शिक्षाशास्त्री मूलभूत निवेश मानते हैं अर्थात् जो इस तंत्र की सबसे मजबूत कड़ी है, वह व्यवहारिक तौर पर सर्वाधिक कमजोर कड़ी के रूप में विद्यमान हैं। इनकी आर्थिक विवशता इस हद तक होती है कि वे महाविद्यालय से प्राप्त पारिश्रमिक से अपना जीवनयापन भी ठीक से नहीं कर सकते, स्तर की बात करना तो बेमानी है।

इस प्रकार जिन कंधों पर शिक्षा का दारोमदार हैं, भविष्य बनाने का सवाँरने का कार्य सौंपा गया है, उनकी दुःस्थिति से यह स्वयं सिद्ध है कि उच्च शिक्षा की स्थिति क्या होगी और इससे भी दुखद बात यह है कि आज स्ववित्तपोषित महाविद्यालय बहुसंख्यक हो गये हैं, जबकि राजकीय और सहायता प्राप्त महाविद्यालय अल्पसंख्यक।

विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा पर विचार करते समय अलग रखना निश्चय ही अतिशयोक्ति होगी, क्योंकि पूरे ताने बाने के वे आधार हैं। निजी संस्थाओं में ढेर सारे विद्यार्थियों का नामांकन भी मोटे धन व अनुदान राशि देने के कारण हो जाता है। इन विद्यार्थियों के द्वारा संचित दीर्घकालिक भाषायी, गणितीय और विश्लेषणात्मक कौशल की उदासीनता के साथ ही उन्हें सामान्य डिग्री तो किसी प्रकार प्राप्त हो जाती है किन्तु उनके ज्ञानात्मक और क्रियात्मक स्तर में मौलिकता का अभाव रह जाता है। अपने वास्तविक क्षमता का आकलन न तो विद्यार्थियों द्वारा होता और न ही उनसे अभिभावक की अपेक्षा उनके क्षमता के अनुरूप होती है। ऐसी स्थिति में धन का उपयोग एवं निजी संस्थान के रथ पर सवार होकर वे अपने-अपने महात्वाकांक्षा को साधते हैं एवं उच्च शिक्षा के भ्रमात्मक स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं।

उदारीकरण के इस दौर में इस व्यवसायीकरण की प्रक्रिया को बंद करना या विपरीत

निर्णय लिया जाना न तो प्रासंगिक ही है और न ही व्यवहारिक, क्योंकि जनसंख्या वृद्धि के दौर में यह समय की माँग भी है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निजी निवेश सम्बन्धी स्पष्ट नीति बनाई जानी चाहिये। मानकों के अनुरूप शिक्षकों का चयन, चयन करते समय गुणवत्ता को ध्यान में रखने के साथ-साथ उनके योग्यता निर्धारण करने के साथ ही उनका न्यूनतम वेतन निर्धारण व पुनर्निरीक्षण भी किया जाना चाहिये। शैक्षिक शिक्षाविदों द्वारा खोले गये महाविद्यालयों को ही मान्यता प्रदान करनी चाहिये। विश्वविद्यालय निरीक्षण समितियों में विविधता एवं प्रत्येक सत्र के मध्य में निरीक्षण आख्या अनिवार्य होनी चाहिये। इसके अनुपालन को सम्बद्धता का अनिवार्य घटक बनाया जाना चाहिये।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि निजी प्रयासों का तकनीकी शिक्षा, व्यवसायिक शिक्षा, शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों के विकास में बड़ा योगदान तो हो सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि उन पर सिर्फ दोषारोपण न किया जाये, बल्कि इन स्ववित्तपोषित संस्थानों का नियमित निरीक्षण, पर्यवेक्षण व उचित नियंत्रण करने के साथ-साथ समय-समय पर मूल्यांकन भी किया जाना चाहिये, जिससे सभी लाभान्वित हो सकें।

नीरज कुमार सिंह -

उच्च शिक्षा किसी देश की न केवल आर्थिक व्यवस्था की रीढ़ होती है, बल्कि वह उसके सामाजिक चिन्तन की बुनियाद, सांस्कृतिक बनावट और राजनीतिक दिशा का भी परिचायक होता है। उच्च शिक्षा प्रदान करने वाले दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय एवं उससे सम्बद्ध अशासकीय महाविद्यालयों की संख्या ३१, राजकीय महाविद्यालय ११, तो वही पर स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की संख्या लगभग २०१ को पार कर गई है।

स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की स्थापना शिक्षा के बाजारीकरण की व्यवस्था का ही परिणाम है। इन संस्थाओं का संचालन बाजार शक्तियों-माँग एवं पूर्ति के सिद्धान्त के आधार पर किया जाता है तथा उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना होता है। इस प्रकार शिक्षा समाज सेवा का क्षेत्र न होकर लाभार्जन का क्षेत्र बन गया है। इन संस्थाओं के संस्थापकों में गिने-चुने कुछ संस्थाओं को छोड़ दिया जाए तो बाकी शेष सभी संस्थाओं के संस्थापक शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े न होकर व्यवसाय, राजनीतिक इत्यादि क्षेत्रों से जुड़े हुए लोग हैं, जो शिक्षा को लाभार्जन का एक सुअवसर मानकर पूँजी का विनियोग कर रहे हैं, ताकि कम से कम समय में अधिक से अधिक लाभार्जन किया जा सके। परिणामस्वरूप उच्च शिक्षा के क्षेत्र में दिनों-दिन ऐसे स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की स्थापना की जा रही है, जिसमें अपेक्षित मानकों का अभाव पाया जाता है, न तो वहाँ पढ़ने-पढ़ाने की व्यवस्था उपलब्ध है, और न ही मानक के अनुसार शिक्षकों की नियुक्ति की जा रही है। शासनादेश संख्या १६६०/सत्तर-२-६७-२(८५)/६७ दिनांक ११.११.१६६७ तथा शासनादेश संख्या ४२२८ए/सत्तर-२-६६-२(८५)/६७ दिनांक ३०.१०.६६ में शासनादेश द्वारा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्ववित्तपोषित पाठ्यक्रमों को प्रारम्भ करने हेतु मानकों का निर्धारण किया गया है। इन मानकों में अखिल भारतीय तकनीकी शिक्षा परिषद् के क्षेत्रान्तर्गत आने वाले पाठ्यक्रमों तथा इसके परिक्षेत्र के बाहर के पाठ्यक्रमों के लिए अलग-अलग मानक निर्धारित किया गया है। उक्त दिनों

११.११.९७ के शासनादेश में ऐसी संस्थाओं तथा महाविद्यालयों में उल्लिखित पाठ्यक्रमों हेतु आध्यापकों की नियुक्ति प्रक्रिया तथा इन्हें अनुमन्य किये जाने वाले वेतन की स्थिति भी स्पष्ट की गयी है।

वास्तव में शासन के द्वारा शासनादेश जारी कर दिया जाता है कि स्ववित्तपोषित महाविद्यालय, उससे सम्बन्धित पाठ्यक्रम तथा प्राचार्य, शिक्षकों एवं कर्मचारियों के नियुक्त करने के लिए अमुक मानकों को पूरा करना आवश्यक है, लेकिन दुर्भाग्य कि शासन एवं विश्वविद्यालय में कुछ ऐसे भ्रष्ट अधिकारी, जिसमें विश्वविद्यालय स्तर पर पैनेल इन्पेक्शन के विशेषज्ञ भी आते हैं, जो स्ववित्तपोषित महाविद्यालय के निरीक्षण करने के लिए जाते हैं, ये निरीक्षण तो नाममात्र का करते हैं, लेकिन उनसे मोटी रकम वसूल करना नहीं भूलते हैं, फिर सम्बद्धता विभाग में फाइल को एक टेबुल से दूसरे टेबुल पर जाने के लिए भी मोटी रकम खर्च करनी पड़ती है और सम्बद्धता से शासन तक फाइल जाने पर शासन स्तर पर मोटी रकम वसूल किया जाता है। जो इन स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के संस्थापकों से मोटी रकम लेकर उन सभी संस्थाओं को वे मान्यता प्रदान कर देते हैं, जो कि शासन एवं विश्वविद्यालय के मानकों को पूरा नहीं करते हैं, इस भ्रष्टाचार के कारण ऐसे-ऐसे स्ववित्तपोषित महाविद्यालय खुल गए हैं, जिनकी स्थिति आज प्राथमिक पाठशालाओं से भी गई गुजरी हो गयी है।

समस्या एवं समाधान :

१. संस्था को छात्रों के शिक्षण शुल्क से प्राप्त होने वाली आय का ७५ से ८० प्रतिशत भाग संस्था द्वारा वेतन मद में खर्च करने का प्रावधान है। लेकिन इस नियम का पूर्णरूप से उल्लंघन करते हुए केवल १० से १५ प्रतिशत भाग वेतन पर ये संस्थाएं खर्च करती हैं।
२. शिक्षकों को सी.पी.एफ., जी.एल.आई.सी. तथा भारतीय जीवन बीमा निगम की पेंशन योजना की सुविधा देने का प्रावधान है। लेकिन दो-तीन संस्था को छोड़ दिया जाए तो शेष सभी संस्थायें इस नियम का भी पूर्ण रूप से उल्लंघन करती है।
३. अवकाश नियम-परिनियम १६.१२ के (e) एवं (f) को छोड़कर शेष अवकाश नियमानुसार देने का प्रावधान है। लेकिन इस नियम का भी उल्लंघन इन संस्थाओं के द्वारा किया जाता है।
४. स्ववित्तपोषित संस्थाओं के शिक्षकों के लिए अर्हताएं तथा शर्ते वही रहती है जो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित हैं। ऐसी स्थिति में स्ववित्तपोषित शिक्षकों के वेतन, अंशदायी भविष्य निधि व अवकाश इत्यादि अशासकीय महाविद्यालयों के शिक्षकों से भिन्न क्यों?
५. सेवानिवृत्त शिक्षकों को मानदेय पर पुनः पद दिये जाने के पीछे युवा पीढ़ी के अधिकार छीनने के अलावा और क्या कारण हो सकते हैं? इससे तो यह अच्छा होता है कि सेवा निवृत्ति की आयु सीमा सत्तर वर्ष कर दी जाए या नेताओं की भाँति उन्हें आजीवन पद पर रखा जाए। एक तरफ पेंशन, दूसरी तरफ मानदेय का वेतन क्या दोहरे लाभ में नहीं आता?
६. स्ववित्तपोषित शिक्षकों के साथ भेदभाव पूर्ण नीति अपनायी जाती है। इनकी स्थिति दैनिक मजदूर से भी बदतर बनाने में प्राचार्य, प्रबन्धक, शासन व विश्वविद्यालयों के अधिकारियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।
७. लगभग ५ प्रतिशत स्ववित्तपोषित संस्थाओं को छोड़कर शेष सभी संस्थायें अपने यहाँ

सामूहिक नकल को बढ़ावा दे रही हैं। ऐसी स्थिति में इन संस्थाओं से निकलने वाले छात्रों को अपने सुनहरे भविष्य की कल्पना करना व्यर्थ है।
८. स्ववित्तपोषित महाविद्यालय, शासन व विश्वविद्यालय के नियमों का पूर्ण रूप से उल्लंघन करते हैं। इन नियमों का उल्लंघन करने पर विश्वविद्यालय अथवा शासन कठोर कार्रवाई नहीं करता।
९. यहाँ तक इन स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में प्राचार्य एवं शिक्षकों की नियुक्ति कागज में किसी और की होती है और कार्य कोई और करता है।

समस्याएँ तो अनेक हैं और उन समस्याओं का समाधान करने के लिए भी अनेक माध्यम हैं। इनका समाधान करने में सबसे पहले शासन व विश्वविद्यालय को सख्ती के साथ कदम उठाना होगा; तो वही पर दूसरी ओर प्राचार्य, प्रबन्धक एवं शिक्षकों को भी अपने कर्त्तव्यों एवं दायित्वों का पूर्ण ईमानदारी के साथ पालन करना होगा। कम से कम कुल आय का इतना प्रतिशत भाग शिक्षकों के वेतन पर खर्च किए जाए, जिससे आज के परिवेश को देखते हुए शिक्षक अच्छी तरह से सांस ले सके और अपने आपको शोषित महसूस न कर सकें। साथ ही कुछ प्रतिशत महाविद्यालय के विकास में भी खर्च किया जाना चाहिए।

सुभाष कुमार गुप्ता-

शिक्षा का हर व्यक्ति के जीवन में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। शिक्षा व्यक्ति को अज्ञानता के भंवर से निकालकर विद्वान बनाती है तथा देश की प्रगति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यही कारण है कि विद्वानों का सर्वत्र सम्मान होता है। इसके साथ ही व्यक्ति को उत्तम चरित्र का तथा दूरदर्शी बनाने में भी शिक्षा का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

पं. जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है कि ''शिक्षा का महल अन्य विषयों से बढ़कर है। एक राष्ट्र का निर्माण उस देश के नागरिक करते हैं और शिक्षा उन नागरिकों का निर्माण करती है।'' व्यक्ति के जीवन में शिक्षा का विशेष महत्त्व है। शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं दृष्टिकोण को जीवन पर्यन्त प्रभावित करता है। उत्तम विचार एवं कार्य के लिए उत्तम शिक्षा आवश्यक होती है। शिक्षा ऐसा कारक है जो व्यक्ति के व्यवहारों में प्रतिशोधन लाता है। एक शिक्षित व्यक्ति समाज में समायोजित व्यवहार करता है और समाज उससे अपेक्षित व्यवहार की अपेक्षा करता है। शिक्षा द्वारा व्यक्ति की सामाजिक स्थिति के मौलिक आधारों को मापा जाता है, सत्य तो यह है शिक्षा व्यक्ति की सामाजिक भावनाओं, सामाजिक दृष्टिकोण तथा सामाजिक गुणों का विकास करती है। (वुड.एम.वी : सेकेण्ड सर्वे आफ रिसर्च इन एजुकेशन सोसाइटी फार एजूकेशनल रिसर्च एण्ड डेवलपमेन्ट, बड़ौदा, इण्डिया, १९९२ पृष्ठ ७८)

वर्तमान परिवेश में उच्च शिक्षा की स्थिति : वर्तमान में जो शिक्षा की स्थिति है उसे आप एक विडंबना ही कहेगें। आज निजी विश्वविद्यालय एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालय कुकुरमुत्ते की तरह खुल रहे हैं। उच्च शिक्षा का सबसे बड़ा संकट यह है कि हमारे विश्वविद्यालय की डिग्रियां सिर्फ बेरोजगारों की फौज बढ़ा रही है। उनमें से अधिकांश को रोजगार पाने के योग्य भी नहीं माना जाता है, इसके अनेक कारण हैं।

आज अधिकांश उच्च शिक्षा केन्द्रों में विशेषकर निजी क्षेत्रों में गिने चुने प्रोफेशनल

कोर्सेज की भरमार है, इसका परिणाम यह होगा कि भविष्य इन विषयों में रोजगार के लिए जितनी जगहें खाली मिलेगी उनसे कई गुना संख्या में बेरोजगार उम्मीदवार उपलब्ध होगें। इस अधिक्य के कारण इन क्षेत्रों में भी बेरोजगारी का संकट पैदा होने की आशंका है। इसलिए हमें अभी से इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शिक्षा के विकास का प्रोफेशनल कोर्स का बुलबुला फूट न जाय।

स्ववित्तपोषित महाविद्यालय की समस्यायें :

स्ववित्तपोषित महाविद्यालय के प्राध्यापकों को सम्मानजक वेतन नही मिल पा रहा है, जिसके कारण अपना जीवन सही रूप से निर्वाह नहीं कर पा रहे हैं, यदि उनका जीवन सही से निर्वाह नही होगा तो अपने विद्यार्थियों को सही दिशा नहीं दें सकते, क्योंकि यदि वे खुद को संतुष्टि नहीं रख सकते तो वह दूसरों को कभी-भी संतुष्ट नहीं कर सकते हैं।

आज स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की स्थिति बहुत दयनीय हो गई है। वर्तमान में शिक्षा मात्र डिग्री प्राप्त करना रह गया है, हर जगह भ्रष्टाचार एवं व्यवसायीकरण व्याप्त है।

स्ववित्त महाविद्यालयों की स्थिति में सुधार के लिए समाधान :

१. स्ववित्तपोषित महाविद्यालय जो अपना सभी मानक पूरे कर रहे हैं, उनको अनुदान (Subsidy) प्रदान करना चाहिए, जिससे उस संस्था में कार्यरत प्राध्यापक एवं कर्मचारी का उचित पारिश्रमिक मिल सके।

२. सरकार को उन स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों की मान्यता समाप्त कर देनी चाहिए, जो केवल नकल कराकर विद्यार्थियों के भविष्य के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं।

३. महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय में सेमेस्टर प्रणाली पाठ्यक्रम चालू करनी चाहिए जिससे विद्यार्थियों की शिक्षा की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहें।

४. सरकार को स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों पर विशेष ध्यान देना चाहिए, शिक्षा की गुणवत्ता बनाये रखने हेतु ईमानदारी से प्रयास किये जायँ।

५. अधिकांशतः स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के प्रबन्धकों एवं प्राचार्यों को यह भय रहता है कि यदि विद्यार्थी किसी सत्र में फेल हो जायेगा तो उसे अगले कक्षा में जाने से मिलने वाला आय का स्रोत बन्द हो जायेगा। इन भयों के कारण ही छात्र/छात्राओं को नकल कराकर परीक्षा उत्तीर्ण कराते हैं। इसलिए सरकार स्ववित्तपोषित महाविद्यालय को अनुदानित सूची में शामिल कर इन भयों से मुक्ति दिला सकती है, जब इन भयों से मुक्ति मिल जायेगी तो महाविद्यालय में नकल होने की प्रवृत्ति को रोका जा सकता है।

६. सरकार को स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में स्वकेन्द्र व्यवस्था को समाप्त कर देना चाहिए।

७. यदि निजी महाविद्यालय की स्थापना के लिए राज्य सरकार मान्यता प्रदान कर रही है तो शुरु में आवश्यक अनुदान (Subsidy) प्रदान करना चाहिए। जिससे महाविद्यालय जीवित रहें।

श्रीराम यादव-

गोरखपुर में शिक्षा का एक बहुत बड़ा केन्द्र गोरखपुर विश्वविद्यालय है। विश्वविद्यालय में स्नातक, परास्नातक, विधि एवं डिप्लोमा की कक्षाएं चलायी जाती हैं। इससे सम्बन्धित बहुत से

अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित कालेज हैं जिसमें विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (U.G.C.) द्वारा योग्यता धारक शिक्षकों की नियुक्ति की जाती है। इन्हीं शिक्षकों के अध्यापन पर कालेजों की गुणवत्ता की पहचान की जाती है। जिस कालेज में योग्य शिक्षकों की नियुक्ति की जाती है उस कालेज का विकास अतिशीघ्र हो जाता है और जिसमें मानक के अनुसार शिक्षकों का चयन नहीं किया जाता उस कालेज का तथा बच्चों के विकास की प्रक्रिया मन्द हो जाती है। शिक्षा एवं ज्ञान देने के क्षेत्र में शिक्षक एवं गुरुओं का विशेष योगदान है। कोई भी व्यक्ति बिना ज्ञान एवं गुरु के आगे नहीं बढ़ सकता। शिक्षा एवं ज्ञान का अर्थ केवल सूचनाओं का संग्रह होकर रह गया है।

हमारे देश में मौजूदा समय में २२ करोड़ बच्चे स्कूल जाते हैं, लेकिन सिर्फ २.६० करोड़ छात्र ही विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय तक पहुँच पाते हैं। शेष १६ करोड़ से अधिक बच्चे उच्च शिक्षा से बंचित रह जाते हैं। उच्च शिक्षा का महंगा होना एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों का शिक्षा केन्द्र की जगह व्यवसायिक हो जाना इसका मुख्य कारण है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है। स्वतंत्रता के पश्चात् विश्वविद्यालय शिक्षा में सुधार हेतु गठित राधाकृष्णन आयोग ने लिखा है कि मनुष्य के बौद्धिक एवं नैतिक विरासत का प्रसार, ज्ञान का विस्तार, व्यक्तित्व का विकास तथा विभिन्न क्षेत्रों यथा राजनीति व्यवसाय एवं प्रशासन में नेतृत्व प्रदान करने का प्रशिक्षण देना उच्च शिक्षा का उद्देश्य है। पं. जवाहर लाल नेहरू के अनुसार विश्वविद्यालय का कार्य मानवता का विकास, तर्क एवं चिन्तन का विकास तथा सत्य का अन्वेषण करना है। इस प्रकार विश्वविद्यालय यदि अपने कार्यों का समुचित ढंग से सम्पादन करता है तो यह व्यक्ति एवं राष्ट्र दोनों के हित में होगा। आज एक ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे एक ओर हमारी भौतिक आवश्यकता की पूर्ति हो तो दूसरी ओर मनुष्य का विकास हो। उच्च शिक्षा व्यक्तिगत चरित्र के साथ राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण का भी साधन बने। उच्च शिक्षा सबको उपलब्ध हो, इसके लिए नये प्रयोगों की भी आवश्यकता है। वर्तमान शिक्षा पद्धति में जीवन सर्वथा उपेक्षित है, समाज गौड़ है, आजीविका जीवन के प्रत्येक पहलू पर हावी है। 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् जो विद्या अज्ञान से, अवद्या से मुक्त करती है वही विद्या सार्थक है। विद्या वह है जो जीवन और जगत की समस्याओं का समाधान करे, मनुष्य को अपनी पहचान दे, सृजन चेतना को जगाये और जीवन मूल्यों को अभिप्रेरणा दे। भौतिक लाभ की लालसा से प्रेरित उच्च शिक्षा के आधुनिक संस्थान आइन्स्टीन या बिलगेट्स बनने की प्रेरणा प्रदान कर सकते हैं किन्तु गौतम बुद्ध, महाबीर स्वामी, ईसा मसीह या महात्मा गांधी के मार्ग पर चलने को प्रेरित नही कर सकते।

भूमण्डलीकरण के इस दौर में राष्ट्रवाद की भावनाओं को बनाये रखना भी उच्च शिक्षा के लिए एक प्रमुख चुनौती है। उच्च शिक्षा के निजीकरण के परिणाम स्वरूप शिक्षण संस्थाओं में तकनीकी तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का वर्चस्व लगातार बढ़ता जा रहा है। ऐसी स्थिति में शिक्षालयों का वातावरण मानवीय दृष्टि से इतना कुपोषित एवं रूग्ण होता जा रहा है कि यहाँ पर छात्रों के अन्दर शिक्षा के भावात्मक पक्ष से जुड़े राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीय एकीकरण जैसे मूल्यों को विकास करना कल्पना से परे होगा। इस स्थिति में शिक्षक एवं छात्रों के सम्बन्धों में भी दूरियां पनपती हैं। छात्र एवं शिक्षक महाविद्यालयों के सबसे महत्वपूर्ण घटक है। हमें इस बात का ध्यान

रखना चाहिए कि छात्र और अध्यापक एक दूसरे के प्रति संवेदनशील हो। शिक्षा के प्रति प्रतिबद्धता एवं क्रियाशीलता से ही एक आदर्श नागरिक के निर्माण का लक्ष्य पूरा किया जा सकेगा।

स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में शिक्षकों की स्थिति दैनिक मजदूर से भी बदतर है। एक तरफ तो समाज में शिक्षकों की उच्च स्थिति है तो वही दूसरी तरफ स्ववित्तपोषित कालेजों में शिक्षकों का मानसिक एवं आर्थिक शोषण किया जाता है। इन कालेजों में एक ही विषय अध्यापक से अपने विषय की बी०ए० भाग एक, दो व तीन के सभी प्रश्नपत्रों का अध्यापन कार्य कराया जाता है इसके बदले में उन्हें निर्धारित वेतन भी मुहैया नहीं कराया जाता है। कम वेतन पर अध्यापन कार्य करने के लिए विवश किया जाता है। समय से कालेज आने के लिए निर्देश देना और जब तक सभी विषयों की कक्षाएं संचालित न हो जाय तब तक शिक्षकों को रोके रहना प्रबन्धकों की एक आदत सी बन गयी है। छोटी-छोटी बातों के लिए भी शिक्षकों को अधिकांश प्रबन्धकों की कहा-सुनी का सामना करना पड़ता है। बेरोजगारी और निर्धनता के कारण, योग्य और मानक धारक शिक्षक भी कम वेतन पर अध्यापन कार्य करने के लिए विवश हो जाता है, जिसका फायदा उठाकर प्रबन्ध-तंत्र शिक्षकों से मनचाहा काम लेते हैं। इस स्थिति में शिक्षकों की मानसिकता संकुचित एवं क्षीण होती जा रही है। वे कम वेतन के चलते सदैव मानसिक तनाव से ग्रसित रहते हैं। अपने दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं को भी बड़ी मुश्किल से जुटा पाते हैं। स्ववित्तपोषित कालेजों में शिक्षकों को दिया जाने वाला वेतन इतना कम होता है कि अन्य रोजगार में जुटे व्यक्तियों से वह अपनी तुलना भी नहीं कर सकता।

स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में प्रबन्धक मनचाहा शुल्क का निर्धारण करते हैं तथा बच्चों से अधिक फीस वसूल करते हैं। शिक्षकों को दिया जाने वाला वेतन भी निर्धारित तिथि पर नहीं दिया जाता है। शिक्षकों के सामने सबसे विषम परिस्थिति तब है जब शिक्षकों को नकल कराने के लिए बाध्य किया जाता है। एक शिक्षक जो पूरे लगन और निष्ठा से पूरे सत्र शिक्षण कार्य सम्पन्न करता है, कक्षाओं का संचालन करता है उसे ही परीक्षाओं में नकल कराने के लिए विवश होना पड़ता है। यदि कोई शिक्षक नकल कराने से इन्कार करता है तो उसे महाविद्यालय से निकालने की धमकी दी जाती है। या महाविद्यालय से हटा दिया जाता है ऐसी स्थिति में शिक्षक महाविद्यालय के प्रबन्धक के हाथ की कठपुतली बन के रह जाता है।

स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में परीक्षा के समय परीक्षार्थियों को पढ़ने या याद करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है बल्कि यह कार्य उस महाविद्यालय के शिक्षक करते हैं। परीक्षा के समय सामूहिक नकल कराते हैं और ईमला बोलकर लिखाते हैं। जिस विषय की परीक्षा अच्छे ढंग से नकल के साथ सम्पन्न होती है, उस विषय के विषय अध्यापक की तारीफ की जाती है और उसे पुरस्कार दिया जाता है। यदि किसी शिक्षक को अपने विषय के परीक्षा में नकल कराने में कोई त्रुटि हो जाती है तो उसे प्रबन्धक के गुस्से का सामना करना पड़ता है। ऐसे महाविद्यालयों के प्रबन्धक पैसे के बल पर विश्वविद्यालय के सचल दस्तों से भी सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। पैसा देकर उड़ाका दल की टीम को विद्यालय आने से मना कर देते हैं तथा शिक्षकों को आश्वस्त कर देते हैं कि आप खुल कर नकल कराइये कोई टीम आज आने वाली नहीं है। शिक्षक लाचार होकर

प्रबन्धक के बातों पर अमल कर लेते हैं। स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में नकल कराकर बच्चों को पास कराया जाता है। विद्यार्थियों के भविष्य के साथ खिलवाड़ किया जाता है। नकल करके उत्तीर्ण बच्चे किसी भी प्रतियोगी परीक्षा में सफल नहीं हो सकते और उनकी डिग्री धरी की धरी बेकार हो जाती है। वे जीवन में सफल नहीं हो पाते और अपने शिक्षकों को इसके लिए जिम्मेदार ठहराते हैं। देखा जाय तो नकल के लिए स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों के शिक्षक जिम्मेदार न होकर प्रबधतंत्र जिम्मेदार हैं।

विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों के शिक्षकों की नियुक्ति में राजनैतिक हस्तक्षेप भी उच्च शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मक सुधार की दिशा में एक प्रमुख बाधा है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में गिरावट का प्रमुख करण बड़ी संख्या में छात्रों का प्रवेश है। उच्च शिक्षा के दरवाजे उच्च मेधायुक्त छात्रों के लिए ही खुले होने चाहिए। प्रवेश प्रक्रिया में भी परिवर्तन किया जाना चाहिए। उच्च शिक्षा के संस्थानों में प्रवेश का मानदण्ड केवल उपलब्धि परीक्षा के प्राप्तांक को ही नही बनाना चाहिए बल्कि प्रतियोगी परीक्षाओं का आयोजन किया जाना चाहिए। जिससे योग्य एक कुशल विद्यार्थियों का चयन किया जा सके। अच्छी शिक्षा व्यक्ति और समाज दोनों के लिए आवश्यक है। शिक्षा विद्यार्थियों को एक जिम्मेदार नागरिक बनाने, उनके आवश्यकता की पूर्ति करने एवम् उनका सर्वांगीण विकास करने में सहायक होती है।

डॉ. राजशरण शाही –

१९९० के बाद शिक्षा की संकल्पना में व्यापक बदलाव आया है। शिक्षा में स्ववित्तपोषित व्यवस्था इसी बदलाव की उपज है। आज शिक्षा की जो व्यवस्था उभरकर सामने आयी है, उसमें सामाजिक एवं राष्ट्रीय हितों के प्रति कोई संवेदना नहीं दिखायी देती। वर्तमान में शिक्षा व्यक्तिगत विकास का साधन मात्र बनती जा रही है। आजादी के बाद शिक्षालयों से हमने अपेक्षा की भी कि वे समाज की समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करेंगें, लेकिन आज शिक्षालय समाज के लिए समस्या उत्पन्न करने के साधन बनते जा रहे हैं। समाज में बन्धुत्व, समता, सामाजिक न्याय एवं शोषण मुक्त व्यवस्था की स्थापना की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के बजाय शिक्षालयों से शोषण, विषमता, अन्याय एवं कदाचार के संदेश समाज में नित्य प्रति प्रसारित हो रहे हैं। आज शिक्षालय स्वयं विसंगतियों एवं भेदभाव के शिकार हैं तो वह समाज में व्याप्त भेदभाव को कैसे दूर करेंगें?

शिक्षक की सम्पूर्ण अवधारणा में आये इस बदलाव के कारण पूर्व में निर्मित मानकों के प्रति संचालकों की कोई आस्था नहीं रह गयी है। शिक्षा के क्षेत्र में जो समस्याएं आज दिखायी दे रही हैं, उनके समाधान के लिए प्रथमतः सरकार को शिक्षा सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण में बदलाव लाना होगा। आज सरकार शिक्षा में निवेश को अनुत्पादक मान रही है, जिसके कारण ही स्ववित्तपोषित व्यवस्था का अभ्युदय हुआ है। सरकार की इस सोच के मूल में ही भूल है। क्योंकि शिक्षा का प्रभाव व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र पर इतना व्यापक तथा प्रच्छन्न होता है कि उनका प्रत्यक्ष मापन सम्भव ही नहीं है। शिक्षा व्यक्ति के अन्तश्चेतना को प्रभावित करती है। अतः मौद्रिक उपायों से इसका मापन न्यायसंगत भी नही है। एक चीनी कहावत है कि अगर आप एक साल के विकास की योजना बना रहे हैं तो फसल उगाइये। अगर दस साल के विकास की योजना क्या बना रहे

हैं तो पेड़ लगाइये, परन्तु यदि सौ साल के विकास की योजना बना रहे हैं तो शिक्षालयों की स्थापना कीजिए। विकास की ऐसी योजना जिसका प्रतिफल लम्बे समय पश्चात् समाज को प्राप्त होगा तथा जिसका अप्रत्यक्ष लाभ प्रत्यक्ष लाभ की अपेक्षा ज्यादा है, निश्चित रूप से उसकी जिम्मेदारी सरकार को ही वहन करनी चाहिये। लोकतन्त्र में शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाओं की जिम्मेदारी का निर्वहन न करना कल्याणकारी राज्य की स्थापना से मुँह मोड़ना है। ज्ञानवान समाज के लिए प्राथमिक शिक्षा ही नहीं, उच्च शिक्षा की मूलभूत आवश्यकता है।

स्ववित्तपोषित व्यवस्था में शिक्षा के केन्द्र में न तो छात्र है, न ही समाज या शिक्षक है। शिक्षा के केन्द्र में आज राजनीतिज्ञ, पूँजीपति और नौकरशाह हैं। छात्रों और शिक्षकों की उपेक्षा कर शिक्षालय राष्ट्र व समाज का विकास नहीं कर सकते। स्ववित्तपोषित व्यवस्था के कारण शिक्षकों का मनोबल प्रभावित हुआ है। परन्तु ध्यान रहे कि यदि समाज में शिक्षक का मनोबल टूट जाएगा, तो राष्ट्र भी अपना अस्तित्व नहीं बचा पाएगा। इसीलिए १९८६ की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कहा गया है कि कोई भी राष्ट्र अपने शिक्षक के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकता (No nation can rise above the level of its teacher)। शिक्षकों के मनोबल को टूटने से बचाने हेतु उनकी व्यावसायिक गरिमा के संरक्षण एवं सम्बर्द्धन के साथ ही उनके सामाजिक एवं आर्थिक हितों की सुरक्षा एवं संरक्षा उनकी व्यक्तिगत नही वरन् राष्ट्रीय आवश्यकता है। इस जिम्मेदारी से मुक्ति के सभी वैयक्तिक व सरकारी प्रयास शिक्षा, शिक्षक व शिक्षार्थी के लिए ही नहीं अपितु समाज व राष्ट्र के लिए भी हानिकारक साबित होंगें।

शिक्षा में सुधार शैक्षिक प्रणाली में एकरूपता लाकर ही की जा सकती है। वित्तपोषित, स्ववित्तपोषित, निजी तथा सरकारी व्यवस्था के कारण हमने शिक्षालयों के बीच जो दीवारें खड़ी कर दी है, शिक्षा के स्वस्थ्य विकास की दिशा में दीवारें अवरोध उत्पन्न कर रही हैं। इसी कारण छात्रों से लेकर शिक्षकों के चयन में विसंगतियाँ दिखायी देती हैं, यह इतनी प्रभावी है कि छात्र के मस्तिष्क की अनिवार्य हिस्सा बन गयी हैं जिसके कारण उसका पारिवारिक और सामाजिक जीवन भी इन विसंगतियों का शिकार हो रहा है। अतः शिक्षा में सुधार सम्बन्धी सबसे प्रभावी पहल शिक्षा में व्याप्त विभेद को समाप्त करना है।